केशव-सुधा

प्रो० कन्हैयालाल सहल

केशव-सुधा

महाकवि केशव के काव्य के कुछ उत्कृष्ट अंशों का संकलन

संपादक

प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए०

बिरला कालेज,

पिलानी

प्रकाशक

गोविन्द हाउस,

जयपुर।

मूल्य २।)

सूचनिका

केशव काव्य के एक ऐसे संकलन की आवश्यकता बहुत दिनों से प्रतीत हो रही थी जिसमें केशव की काव्य कृतियों के उत्कृष्ट अंश संकलित किये गये हों, जो कवि के वास्तविक महत्व को भली भांति हृदयंगम करा सके। प्रस्तुत पुस्तक इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर तैयार की गई है। इसमें राम-चन्द्रिका के अतिरिक्त कविप्रिया, रसिकप्रिया आदि केशव की अन्यान्य कृतियों के अंशों को भी स्थान दिया गया है। अधिक शृङ्गार वाले अंशों को बचाने का प्रयत्न किया गया है जिससे संकलन सर्वजनोपयोगी हो सके। आशा है जिस उद्देश्य से सङ्कलन प्रस्तुत किया गया है उसकी सिद्धि हो सकेगी।

सङ्कलन के साथ केशव काव्य के हार्द को प्रकाश में लाने वाली समीक्षा की आवश्यकता थी। मेरे सम्मानीय मित्र श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ने अपने स्वाभाविक सौहार्द के साथ अपना केशवदास शीर्षक निबन्ध सङ्कलन के साथ सम्मिलित करने की अनुमति प्रदान करके मेरा कार्य-भार हल्का कर दिया। उनकी इस स्नेहभरी कृपा का प्रतिदान धन्यवाद देकर मैं नहीं करूँगा।

—संकलनकार

आवश्यक सूचना

असावधानी के कारण सङ्कलित अंशों का क्रम कुछ इधर उधर होगया है। ठीक क्रम इस प्रकार होना चाहिये।

मंगलाचरणः—

१. प्रबन्ध-कवि केशव—

(१) लङ्का में हनुमान

(२) रामाश्वमेध

२. केशव के सम्वाद—

(१) रावण-बाण सम्वाद

(२) अङ्गद-रावण सम्वाद

३. मुक्तक कवि केशव—

(१) रामचंद्रिका

(२) कविप्रिया

(३) रसिकप्रिया

(४) विज्ञान गीता

प्रस्तावना

महाकवि केशव

सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केसवदास ।
अब के कवि खद्योत सम जहँ-तहँ करहिं प्रकास ॥

कविता-करता तीन हैं तुलसी केसव सूर ।
कविता-खेती इन लुनी सीला बिनत मजूर ॥

उत्तम पद कवि गंग के उपमा को बलबीर।
केसव अरथ गँभीर को सूर तीन गुन धीर ।

कवि का दीन्ह न चहै विदाई ।
पूछै केसव की कविताई ॥

दीन्ही न चाहै बिदाई नरेस तो,
पूछत केसव की कविताई ।

कठिन काव्य को प्रेत ।

१—जीवनी

महाकवि केशवदास जाति के सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके पूर्व-पुरुष संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् थे। वे समय-समय पर विविध नरेशों द्वारा सत्कृत होते रहे। इनमें से दिनकर बादशाह अलाउद्दीन के कृपापात्र हुए। इन्होंने गया आदि तीर्थों पर लगने वाला कर बादशाह से माफ़ करवाया। इनके प्रपौत्र त्रिविक्रम मिश्र ग्वालियर-नरेश द्वारा पूजित हुए। त्रिविक्रम मिश्र के प्रपौत्र हरिहरनाथ किन्हीं तोमर-पति के आश्रित थे। इनके पुत्र कृष्णदत्त मिश्र को ओड़छा-नरेश रुद्रप्रताप ने अपने यहाँ बुलाकर पुराण-वृत्ति पर नियुक्त किया। इनके पुत्र काशीनाथ[1] हुए जो ज्योतिष के अच्छे विद्वान थे। इनके तीन पुत्र थे—बलभद्र, केशवदास और कल्याणदास। बलभद्र और कल्याणदास ने भी हिन्दी में कविता लिखी। बलभद्र का 'नखसिख' प्रसिद्ध है।

केशव का जन्म कब हुआ इस का ठीक पता नहीं चलता। विद्वानों ने तीन संवत् दिए हैं—

१६०८ (मिश्रबन्धु)
१६१२ (रामचन्द्र शुक्ल)
१६१८ (लाला भगवानदीन और पीतांबरदत्त बड़थ्वाल)

१—अनेक विद्वानों ने इन्हें ही ज्योतिष के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'शीघ्रबोध' का रचयिता बतलाया है पर यह कथन सर्वथा निराधार है।

केशव इन्द्रजीत के आश्रय में रहते थे। ओड़छा नरेश रुद्रप्रताप के पीछे मधुकरशाह गद्दी पर बैठे। इनके कई पुत्र थे जिनमें दूलहराम, रतनसेन, इन्द्रजीत और वीरसिंहदेव के नाम उल्लेखनीय हैं। दूलहराम मधुकरशाह के बाद राज्य के अधिकारी हुए। इनका प्रसिद्ध नाम रामशाह था। इन्होंने राज्य की व्यवस्था का सारा भार इन्द्रजीत को ही सौंप रखा था। इन्द्रजीत के यहाँ केशव का बड़ा आदर सम्मान था। वे उन्हें गुरु की तरह मानते थे। उन्होंने केशव को २१ गाँव दिए थे, जिनमें एक अभी तक उनके वंशजों के अधिकार में बताया जाता है। इन्द्रजीत के लिए केशव ने एक जगह लिखा है—

भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग-जुग,
केसौदास जा के राज राज सो करत है।

इन्द्रजीत साहित्य, सङ्गीत और कला के बड़े प्रेमी थे। उनके यहाँ बहुत-सी कला-निपुण पातरें (गणिकाएँ) रहती थीं, जिनमें रायप्रवीन बहुत प्रसिद्ध थी। वह कविता भी करती थी। उसकी अनेक कविताएँ हिन्दी में प्रसिद्ध हैं।[२] वह केशव की शिष्या थी। काव्य-शिक्षा उसने केशव से ही प्राप्त की थी। उसी के अनुरोध से केशव ने कविप्रिया नामक ग्रन्थ बनाया था। रायप्रवीन पातर होते हुए भी पतिव्रता थी। एक बार अकबर ने ओड़छा-नरेश पर एक करोड़ का जुर्माना कर दिया। इन्द्रजीत ने केशव को भेजा कि वे प्रयत्न करके उसे माफ़ करा आवें। केशव बीरबल से मिले और उन्हें अपनी काव्यशक्ति से प्रसन्न किया। बीरबल उनकी काव्यशक्ति से अत्यन्त प्रभावित हुए और बादशाह से कह

२—कविता-कौमुदी, प्रथम भाग देखिए।

कर जुर्माना माफ़ करा दिया। साथ ही स्वयं भी केशव को बहुत कुछ पुरस्कार दिया। बीरबल की प्रशंसा में केशव के लिखे कई-एक छन्द मिलते हैं।[3] जुर्माने की माफ़ी की शर्त के तौर पर बादशाह ने रायप्रवीन को दरबार में भेजने के लिए लिखा। तब उसने वहाँ जाकर बादशाह को अपनी कविता से प्रभावित किया[4] और अपने पातिव्रत्य की भी रक्षा की।

इन्द्रजीत के आश्रय में केशव ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ-रसिकप्रिया (१६४८), कविप्रिया (१६५८) और रामचन्द्रिका (१६५८) की रचना की। रसिकप्रिया महाराज मधुकरशाह के जीवनकाल में लिखी गई थी जब इन्द्रजीत महाराजकुमार थे। सम्वत् १६४९ में मधुकरशाह का देहान्त हुआ और रामशाह गद्दी पर बैठे। इन्होंने १३ वर्ष राज्य किया। सम्वत् १६६२ में जहांगीर ने ओड़छे का राज्य वीरसिंहदेव को दे डाला। केशव इनके आश्रय में भी रहे और इनके नाम पर 'वीरसिंहदेव-चरित' लिखा। सम्वत् १६६७ में इन्होंने विज्ञान-गीता समाप्त की और राज-सेवा से अवकाश ग्रहण कर स्त्री-सहित गङ्गा-सेवन करने लगे। उनकी वृत्ति तथा उनका पद उनके लड़कों को दे दिया गया।

केशव का देहांत कब हुआ इसका कोई पता नहीं चलता। कोई सम्वत् १६७४ और कोई सम्वत् १६८० में अनुमान करते हैं।

३—कविता कौमुदी, प्रथम भाग, बीरबल और केशवदास के प्रकरण देखिए।

४—उसका सुनाया हुआ एक छन्द इस प्रकार बताया जाता है—

बिनती रायप्रवीन की सुनियेँ साहि सुजान।
जूठी पतुरी भखत हैं बारी, बायस, स्वान॥

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि विहारी केशव के शिष्य थे। उस समय ओड़छे के पास गुढ़ो गांव में नरहरिदास नाम के एक महात्मा रहते थे। केशव उनके यहाँ आया-जाया करते थे। विहारी के पिता केशौराय (या केशौ-केशौराय) नरहरिदासजी के शिष्य थे। उनका निवास ग्वालियर में था पर पत्नी की मृत्यु के उपरांत गुरु-सत्सङ्ग के लिए वालक विहारी को लेकर ओड़छे ही चले आए। नरहरिदासजी के अनुरोध से केशव ने विहारी को कुछ समय तक अपने पास रखकर साहित्य और काव्य-रीति की शिक्षा दी।

२-केशव के ग्रन्थ

केशव के नीचे लिखे दस ग्रन्थ बताए जाते हैं—

(१) रामचन्द्रिका	(२) कविप्रिया
(३) रसिकप्रिया	(४) विज्ञान गीता
(५) नखसिख	(६) रतनबावनी
(७) वीरसिंहदेव-चरित	(८) जहांगीर-जस-चन्द्रिका
(९) रामालंकृत मञ्जरी	(१०) छन्दशास्त्र का कोई ग्रन्थ

इनमें से अन्तिम दोनों रचनाओं के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं। कई लोगों का कहना है कि रामालंकृत ही छन्दशास्त्र का ग्रन्थ है। नं० ७ और नं० ८ की रचना वीरसिंहदेव और अबुल-फजल के युद्धों का वर्णन है। इसी वीरसिंह ने अबुलफजल को मारा था। कविता की दृष्टि से यह साधारण रचना है पर कुछ ऐतिहासिक महत्व रखती है। जहाँगीर-जस-चन्द्रिका में केशव

ने आश्रयदाता के आश्रयदाता बादशाह जहाँगीर की प्रशंसा में लिखी थी। यह भी शिथिल रचना है। जान पड़ता है कि इन्द्रजीत का आश्रय छूट जाने पर केशव का न तो वह सम्मान रहा और न उनमें वह उत्साह। इसी कारण ये दोनों रचनाएँ बहुत साधारण हुईं।

नं० ६ अर्थात् रतनबावनी केशव की सब से पहिली रचना है। इसमें मधुकरशाह के छोटे पुत्र और इन्द्रजीत के बड़े भाई रतनसेन की वीरता का वर्णन है, जिसने केवल सोलह वर्ष की अवस्था में ही युद्ध में लड़ते हुए वीर गति प्राप्त की थी। यह साधारणतया अच्छी रचना है।

इसमें डिंगलकाव्य का अनुसरण किया गया है और छन्द भी छप्पय अपनाया गया है। राजस्थान में बहुत से कवियों ने बावनियाँ लिखी हैं। जटमल की बावनी प्रसिद्ध है।

नं० ५ नखसिख की रचना भी अच्छी बताई जाती है। कविप्रिया में भी केशव ने एक नखसिख लिखा है।

नं० ४ विज्ञानगीता केशव की वृद्धावस्था की शांतरस-प्रधान रचना है। इसमें कृष्ण मिश्र यति कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटक का बहुत कुछ आधार लिया गया है। इसके अनेक छन्द बहुत सुन्दर हुए हैं। राम-चन्द्रिका और कविप्रिया में भी इसके कई पद्य आए हैं।

नं० २ और नं० ३ साहित्य-रीति-सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। केशव से पूर्व हिन्दी में रीति ग्रन्थों का अभाव सा ही था। एकाध छोटी-छोटी रचनाएँ हुई थीं पर वे नहीं केसमान हो थीं। केशव

संस्कृत के धुरन्धर विद्वान थे। रीति-ग्रन्थों का उन दिनों खूब प्रचार था। केशव को हिन्दी में यह अभाव अखरा और उन्होंने इन दो ग्रन्थों की रचना कर साहित्य को एक नये पथ पर अग्रसर किया। प्रारम्भिक रचनाएँ होने से इनमें त्रुटियाँ हो सकती हैं पर हिन्दी साहित्य को नई दिशा की ओर मोड़ने में ये खू। समर्थ हुई। इनका प्रचार काफी हुआ और लोग इन्हीं से काव्य करना सीखने लगे। अब उन्हें संस्कृत का मुख ताकने की आवश्यकता नहीं रह गई।

रसिकप्रिया महाराजकुमार इन्द्रजीत के अनुरोध से लिखी गई थी। इसमें रस और रस-सामग्री के विविध उपादानों का वर्णन है। शृङ्गार रस को बहुत प्रधानता दी गई है। अन्यान्य रसों को शृङ्गार में ही परिगणित कर दिया गया है। इस ग्रन्थ में १६ प्रकाश हैं।

प्रत्येक विषय का पहले दोहे में लक्षण दिया गया है और फिर उदाहरण। प्रत्येक विषय के प्रच्छन्न और प्रकाश ये दो भेद किए गए हैं। रीतिविवेचन तो सन्तोषजनक नहीं पर उदाहरण रूप में जो पद्य दिए गए हैं उनमें से अधिकांश सुन्दर हैं।

कविप्रिया काव्य-शिक्षा का ग्रन्थ है। इसके उत्तरार्ध में अलङ्कारों का वर्णन किया गया है। इसमें १६ प्रभाव हैं।

इसकी रचना में अलंकार शेखर, काव्यादर्श और कविकल्पलतावृत्ति का आधार लिया गया है। रामचन्द्रिका, रसिकप्रिया और विज्ञानगीता के भी अनेक पद्य इसमें उद्धृत किये गये हैं। इसका क्रम भी रसिक-प्रिया के ही समान है अर्थात् दोहे में

लक्षण देकर फिर उदाहरण दिया गया है। रीति-विवेचन इसका भी वैज्ञानिक नहीं पर उदाहरण स्वरूप जो पद्य दिये गये हैं वे अधिकांश में कवित्व-पूर्ण और भावमय हैं।

तीसरे प्रभाव में कवि ने १८ प्रकार के दोष बताये हैं। उनमें से प्रथम के पाँच नाम अंध, बधिर, पंगु, नग्न और मृतक लिखे हैं। ये नाम संस्कृत के रीति-ग्रन्थों में नहीं मिलते यद्यपि इनमें से कई एक के लक्षण उनमें बताये दोषों के लक्षणों से मिल जाते हैं। डिंगल के रीति ग्रन्थों में दस दोषों का उल्लेख है जिनमें से चार के नाम अंध, बधिर, पंगु, नग्न वही हैं जो केशव ने लिखे हैं। पाँचवाँ मृतक डिंगल के 'अपस' से मिलता है।

पन्द्रहवें प्रभाव में जो नखसिख वर्णन आया है वह प्रायः वही है जिसका उल्लेख आगे हो चुका है।

केशव का यह ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हुआ। इस पर दर्जनों टीकाएँ लिखी गयीं। पुराने जमाने में बिहारी-सतसई को छोड़ कर और किसी ग्रन्थ पर इतनी टीकाएँ नहीं बनीं। अधिकांश टीकाएँ राजस्थान में बनीं। लोग बहुत दिनों तक इसी के सहारे कविता करना सीखते रहे। कवि होने के लिए इसका अध्ययन आवश्यक समझा जाता था।

नं० १ रामचन्द्रिका-यह केशव का सब से प्रसिद्ध ग्रन्थ है, यह महाकाव्य है। इसमें ३९ प्रकाशों या अध्यायों में राम-चरित्र वर्णित है। प्रबन्ध-काव्य की दृष्टि से यह रचना त्रुटि पूर्ण है पर इसके अनेक पद्य बहुत सुन्दर, चमत्कारपूर्ण और भावमय हुए हैं। कवि का ध्यान कथा की ओर उतना नहीं जितना वर्णन

की ओर है। वास्तव में केशव ने इसे प्रबन्ध काव्य के रूप में लिखा नहीं जान पड़ता। उनका उद्देश्य रीति के विविध अङ्गों के उदाहरण एक ही काव्य में एक साथ उपस्थित करने का था। इसी कारण इस ग्रन्थ में कवि ने छन्दों के भी सभी भेदों और प्रभेदों के उदाहरण देने का प्रयास किया है। एक एक दो-दो अक्षरों के छन्द भी नहीं छूटे। रामचन्द्रिका में जितने प्रकार के छन्दों एवं उनके भेदों-प्रभेदों के नाम आए हैं उतने पिंगल के भी शायद ही किसी ग्रन्थ में मिलें।

रामचन्द्रिका की रचना हनुमन्नाटक के आदर्श पर की गई जान पड़ती है। हनुमन्नाटक वास्तव में नाटक नहीं, वह सम्वादात्मक पद्यों का संग्रह-मात्र है। पद्यों के पूर्व वक्ताओं के नाम तथा नाटकीय सूचनाएं दे दी गई हैं। कहीं कहीं गद्य की भी एकाध पंक्ति आ गई है। केशव ने नाटक नहीं काव्य लिखा, अतः कथा-सूत्र रखने का प्रयत्न किया पर इस में वे पूरी तरह सफल नहीं हुए। जगह जगह कथा सूत्र टूटता हुआ दीख पड़ता है।

रामचन्द्रिका की कथा का आधार मुख्यतया वाल्मीकीय रामायण है, पर कवि ने अन्यान्य ग्रन्थों से भी बहुत सी बातें ली हैं। हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव नाटक से बहुत कुछ लिया गया है। रामाश्वमेघ प्रकरण का आधार जैमिनीय रामाश्वमेघ है[१] राजश्री-निन्दा प्रकरण का कादंबरी और राम-विरक्ति प्रकरण का योगवासिष्ठ है।

---

१ डा० रामकुमार वर्मा का यह कथन ठीक नहीं कि लव-कुश-प्रसंग केशव ने वाल्मीकीय रामायण के आधार पर ही लिखा। वाल्मीकीय रामायण का लव-कुश-प्रसङ्ग बिलकुल ही भिन्न प्रकार का है।

रामचन्द्रिका के पद्यों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-(१) संवादात्मक, (२) वर्णनात्मक और (३) कथा-सूत्र जोड़ने वाले।

कथा-सूत्र जोड़ने वाले पद्यों से भाव-पूर्ण होने की आशा नहीं की जा सकती। वे नीरस होते हैं पर प्रबन्ध-रस से सरस प्रतीत होने लगते हैं, केशव में प्रबन्ध-रस की कमी है। अतः ये पद्य कविता की दृष्टि से साधारण हैं।

केशव के संवाद अधिकांश में सुन्दर हैं। उनके संवादात्मक पद्य भाव पूर्ण हैं। पर उनमें से अधिकांश संस्कृत के अनुवाद-मात्र हैं। सुमति-विमति का संवाद प्रसन्नराघव के वार्तालाप का अनुवाद है। रावणबाण-संवाद पर और राम परशुराम-संवाद पर भी, प्रसन्नराघव का काफी प्रभाव है। भरत-कैकेयी का संवाद हनुमन्नाटक के अंक पद्य का अनुवाद है, यही बात रावण-हनुमान और अङ्गद-रावण के संवादों पर लागू होती है।

वर्णनात्मक पद्य ग्रन्थ के सर्व श्रेष्ठ अंश हैं। उनमें से अनेक बड़े ही भावपूर्ण चमत्कारिक और प्रभावशाली बने हैं। अधिकांश पद्य अलंकार प्रधान हैं उनमें अनेक स्थलों पर कल्पना की उड़ान दर्शनीय है। ये पद्य फुटकर पद्यों के रूप में तो बहुत सुन्दर हैं, पर प्रबन्ध में सब जगह ठीक से नहीं खपते। कहीं कहीं इनके कारण अनावश्यक विस्तार हो जाता है और कहीं-कहीं तो ये दूध में कंकर की तरह खटकते हैं।

प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से रामचन्द्रिका को सफल काव्य नहीं कहा जा सकता। पर इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि

केशव सफल प्रबन्ध काव्यकार नहीं हो सकते थे। जहां पर वे रीति के बन्धनों से बँधकर नहीं चले हैं, जहाँ अलंकारों का ध्यान उन्हें भूल गया है, जहाँ उनने संस्कृत ग्रन्थों का आधार नहीं लिया है, सारांश यह है कि जहाँ वे स्वतन्त्र कविता कर चले हैं, वहाँ प्रबन्ध का वे अच्छा निर्वाह कर सके हैं। रामाश्वमेध-प्रसंग इस कथन का अच्छा उदाहरण है। रामाश्वमेध के पूर्व के अधिकांश की रचना केशव ने हनुमन्नाटक का आधार लेकर, उसके आदर्श पर, की जान पड़ती है पर रामाश्वमेध लिखते समय यह आधार नहीं रह गया था। वे स्वतन्त्र थे। इसी कारण रामाश्वमेध प्रकरण प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से पूर्णतया सफल हुआ है। छंदों के अजायबघर से भी उनका यदि पीछा और छूट गया होता तो यह प्रकरण और भी सफल हुआ होता।

२—केशव-काव्य की आलोचना

केशव हिन्दी के सर्व श्रेष्ठ कवियों में से हैं, पुराने लोग उन्हें सूर और तुलसी के समकक्ष रखते आये हैं—

कविता करता तीनि हैं तुलसी केशव सूर।

उधर आधुनिक आलोचकों ने उन्हें हृदय-हीन तक कह डाला है। कवि के लिए सहृदय होना सब से आवश्यक है। बिना हृदय के कोई कैसे कवि हो सकेगा?

यह सच है कि केशव में अनेक खटकने वाली बातें हैं, पर उन्हें हृदय-हीन कहना उचित नहीं जान पड़ता। उनके हृदय को परिस्थिति और वातावरण ने बहुत कुछ दबा लिया था। उनके दोष समय और वातावरण के फल हैं। तुलसी की भाँति केशव उनसे ऊपर नहीं उठ सके पर जहाँ कहीं उठ सके हैं वहाँ उनमें महाकवि की विशेषताएँ पूर्ण-रूप से प्रकट हुई हैं, वहाँ उनकी कविता वास्तव में हृदय-हारिणी हुई हैं, अवश्य ही ऐसे स्थल कम हैं, इसी कारण वे प्रबन्ध-कवि के रूप में सफल नहीं हो सके।

मुक्तक-कवि के रूप में केशव अधिक सफल हुये हैं। रसिक-प्रिया और कविप्रिया में भाव पूर्ण पद्य बड़ी संख्या में मिलेंगे। रामचन्द्रिका के छन्द भी मुक्तक पद्यों के रूप में पढ़े जाने पर हृदय-रञ्जनकारी सिद्ध होंगे।

(१) रस-वर्णन

केशव प्रधानतयाशृङ्गारी कवि हैं। उनकी रचना का अधिकांश शृङ्गार से सम्बन्ध रखता है। रसिक-प्रिया का तो विषय ही शृङ्गार है। शृङ्गार उन्हें इतना प्रिय है कि अन्याय रसों को उनने शृङ्गार का ही अङ्ग मान लिया है। हिन्दी के शृङ्गारी कवियों में केशव का ऊँचा स्थान है। रीति कवियों में बिहारी देव जैसे एक आध कवि ही इस सम्बन्ध में उनसे आगे बढ़े हुये कहे जा सकते हैं।

केशव के शृङ्गार रस के कुछ उत्तम उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

नायिका की शोभा

भूखन सकल घनसार ही के, घनस्याम,
कुसुम-कलित केस, रही छबि छायी सी।
मोतिन की लरी सिर, कंठ कंठ-माल हार,
और रूप ज्योति जान हेरत हेरायी सी।
चंदन चढ़ाये चारु सुन्दर सरीर सब,
राखी जनु सुभ्र सोभा बसन बनायी सी।
सारदा सी देखियत, देखो जाइ केसौराइ,
ठाढ़ो वह कुँवरि जुन्हाई में अन्हायी सी॥

तन आपने भावै सिगार नहीं ये, सिगारि-सिगार-सिगारै बृथा हीं।
ब्रज-भूखन नैननि भूख है जाका सु तौ पै सिगार उतारे न जाहीं॥
सब होत सुगंधन ही तें सुगंध, सुगंध में जात सुगंध बृथा हीं।
सखि, तोहि तें हैं सब भूखन भूखित, भूखन तें तुम भूखित नाहीं॥

* * *

पूरन कपूर पान खाये केसो मुख-बास,
अरुन अधर रुचि सुधारस सुधारे हैं।
चित्रित कपोल लोल लोचन मुकुर ऐन,
अमल झलक झलकनि मोहि मारे हैं॥
भ्रकुटी कुटिल जैसी तैसी न करे ही होइ,
आँजी ऐसो आँखि, केसोराइ हिय हारे हैं।
काहे को सिगारि के बिगारत है, मेरी आली,
तेरे अङ्ग सहज सिगार ही सिगारे हैं॥

कितना अच्छा होता यदि केशव ने अपनी कविता के संबंध में यह विचार रखा होता!

पूर्वराग

केशव, कैसे हुं ईठ न दीठ है दीठ परे रति ईठ कन्हाई।
ता दिन तें मन मेरे को आनि भयी सो भयी, कहि क्योंहु न जाई॥
होहिगी हाँसी जो आवै कहूँ कहि, जानि हितू हित बूझन आयी।
कैसे मिलौं री, मिले विन क्यों रहौं, नैनन हेत, हिये डर, माई॥

* * *

कहूँ बात सुनै सपनेहू बिजोग की होन कहै टुइ टूक हियो।
मिलि खेलियै जा सहुं बालकतें कहि तासों अबोल क्यों जात कियो
कहियै कहा, केसव, नैनन को, बिन काजहि पावक-पुञ्ज पियो।
सखि, तू बरजै अरु लोग हँसैं कहि काहे को प्रेम को नेम लियो॥

प्रिया का पूर्व-राग

सोच, सखी भरि लेत विलोचन, काँपत देखत फूले तमालहिं।
भूले से डोलत बोलत नाहिन, बाग गई किधौं तेरेई तालहिं॥
देख्यो जु चाहति, देखि न आवति ऐसे में हौं न दिखाऊँरी लालहिं
आजु कहा दिखसाधि लगी, जब देख्यो सुहाइ कछू न गोपालहिं॥

मान

सिखै हारी सखी, डरपाइ हारीं कादंबिनी,
दामिनि दिखाइ हारी निसि अधरात की।
झुकिझुकि हारी रति, मारि मारि हारयो मार,
हारी झकझोरति त्रिविधि गति बात की॥
दई निरदई दयी वाहि काहे ऐसी मति,
जारत जु रैन-दिन दाह ऐसी गात की।

कैसे हूँ न माने हौं मनाइ हारी केसौराइ,
बोलि हारी कोकिला, बोलाइ हारी चातकी ॥

विरह-वर्णन

केशव का विरह-वर्णन अधिकांश में अतिशयोक्ति पूर्ण है। उसमें ऊहात्मक पद्धति का अवलम्बन भी अनेक स्थानों पर किया गया है। पर ऐसे चित्र भी हैं जिनमें अतिशयोक्ति होने पर भी वेदना की भाव-पूर्ण व्यंजना है।

प्रवास

चलत चलत दिन बहुत बितीत भये,
सकुचत कत चित चलत चलाए ही।
जात हैं ते, कहौ, कहा नाहिनै मिलत आनि,
जानि यह छांड़ौ मोह बढ़त बढ़ाये ही ॥

मेरी सौं तुमहि हरि, रहियौ सुख-ही-सुख,
मोहू है तिहारी सौंह रैहौं सुख पाये ही।
चले ही बनत जौ, तौ चलिये, चतुर पिय,
सोवत ही जैयौ छाँड़ि, जागौंगी हौं आये ही ॥

* * *

जौ हौं कहौं 'रहिये' तौ प्रभुता प्रगट होति,
चलन कहौं तो हित हानि नाहि सहनो।
'भावै सो करहु' तो उदास-भाव, प्राननाथ,
'साथ लै चलहु' कैसे लोक-लाज बहनो ॥
केसौराइ की सौं तुम सुनहु, छबीले लाल,
चले ही बनत जो पै नाहीं, राज, रहनो।

तैसियै सिखावो सीख तुम ही सुजान पिय,
तुमहिं चलत मोहि जैसो कछू कहनो ॥

यह पद्य संस्कृत के एक पद्य का स्वतन्त्र अनुवाद है पर अनुवाद बहुत सुन्दर हुआ है—ऐसा कि अनुवाद जान नहीं पड़ता।

विरह

हरित-हरित हार, हेरत हियो हिरात,
हारौं हौं हरिन-नैनो, हरि न कहूँ लहौं।
वन-माली ब्रज पर बरखत वन-माली,
वनमाली दूर दुख केशव कैसे सहौं॥

हृदय-कमल नैन देखि कै कमल-नैन,
भयी हौं कमल-नैन, और हौं कहा कहौं।
आप-घने घनस्याम घन ही से होत,
घनस्याम के दिवस घनस्याम बिन क्यों रहौं॥

*　　　*　　　*

सीतल समीर टारि, चन्द्र-चन्द्रिका निवारि,
केसौदास, ऐसे ही तो हरख हिरातु है।
फूलन फैलाइ डारि, भारि डारि घनसार,
चन्दन को डारे चित चौगुनो पिरातु है॥

---

१ यमायांहीत्यपमंगलं वत सखे ! स्नेहे न हंनं वचः।
तिष्ठेति प्रभुता, यथारुचि करुष्वेयाऽप्युदासीनता ॥
नो जीवामि त्वया बिनेति बचनं संभाव्यते वान वा।
तन् मां शिक्षय, नाथ, यत् समुचितं वक्तुं त्वयि प्रस्थिते॥

नीर-हीन मीन मुरझाइ जीवै नीर ही तें,
छीर के छिरीके कहा धीरज धिरातु है।
पायी है तें पीर ? किधौं यों ही उपचार करै ?
आगि को तो डाढ़ो अँग आगि ही सिरातु है॥

* * *

फूल न दिखाउ सूल फूलत है हरि बिन,
दूरि करि माला बाला—व्याल सी लगति है।
चँवर चलाउ जनि, बीजन हलाउ मति,
केसव सुगंध बायु बाइ सी लगति है॥
चन्दन चढ़ाउ जिन, ताप सी चढ़त तन,
कुंकुम न लाउ, अङ्ग आग सो लगति है।
बारबार बरजति, बावरि है ? बारौं आनि,
बीरी न खवाइ, बीर, बिख सी लगति है॥

निद्रोपालम्भ

आये ते आवैगी, आँखिन आगे ही डोलिहै, मानहु मोल लयी है।
सोवै न, सोवन देइ न, यों तब सो इनमें उन साथ दयी है॥
मेरियै भूल, कहा कहौं, केसव, सौत कहूँ तें सहेली भयी है ?
स्वारथ ही हितु है सबके, परदेस गये हरि नींद गयी है॥

चन्द्रोपालम्भ

चन्द नहीं बिस-कन्द है, केसव, राहु यही गुन लीलि न लीन्हो।
कुम्भज पावन जानि अपावन धोखे पियो पचि जान न दीन्हो॥
या सों सुधाधर, सेस बिसाधर, नाम धरो, बिधि है बिधि-हीनो।
सूर सों माई, कहा कहिये जिन पापु तें आपु बराबर कीन्हो॥

नायक-नायिका के बीच कुछ वाक्-चातुर्य और परिहास भी भारतीय प्रेम प्रवृत्ति का एक मनोहर अङ्ग है। अतः उसका विधान यहाँ के कवियों की शृङ्गार-पद्धति में चला आ रहा है। केशव ने प्रेमियों की इस छेड़छाड़ का भी सुन्दर विधान किया है—

दै दधि; दीन्हो उधार हौ, केसव ? दानि कहा जब मोल लै खैहैं।
दीन्हे बिना जु गयी हो गयी; न गयी न गयी, घर ही फिरि जैहैं॥
गो हितु, बैर कियो ? कब हो हितु ? बैर किये बरु नीकी ही रैहैं।
बैरु कै गोरस बेचहुगी अहो ! बेच्यो न बेच्यो तौ ढारि न दैहैं॥

* * *

बन जैये, चलो, कोऊ टाली है, केसव ? हौं तुम, है तौ अरी अरिहौ।
कछु खेलयै; खेलि न आवत; आजु हीं भूलो ? न भूलो गरे परिहौ ?
हित है हिय में किधौं नाहिं तऊ; हित नाहीं हिये तौ, लला लरिहौ ?
हम सों यह बूझिये ? ऐसी कहो; जू कही तौ कही, 'ब कहा करिहौ ?

* * *

सखी, बात सुनौ इक मोहन की, निकसी मटुकी सिर रीती लकै।
पुनि बाँधि लयी सु नये नतना, रु कहूँ-कहूँ बुँद करी छल कै॥
निकसी उहि गैल हुते जहँ मोहन, लीन्ही उतारि जबै चल कै।
पतुकी धरि स्याम खिसाइ रहे, उत ग्वारि हँसी मुख आँचल कै॥

केशव का शृङ्गार-वर्णन अधिकांश में सुन्दर होने पर भी कहीं कहीं सदोष भी है। उसमें ऐसे स्थल भी मिलेंगे जहाँ वह असंस्कृत, अनुचित, असंयत, उद्वेगजनक और बीभत्स हो गया है। कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

(१)

मग को श्रम श्रीपति दूरि करैं सिय का।
सुभ वाकल-अंचल सों॥
श्रम तेऊ हरैं तिनको, कहि केसव,
चंचल चारु दृगंचल सों॥

यहाँ राम और सीता दोनों की ही मर्यादा पर पानी फेर दिया गया है। जगदम्बा सीता की लोक-मानस-प्रतिष्ठित भावना को इस कथन से अत्यन्त आघात पहुंचता है और हृदय में विरक्ति का भाव जागरित होता है।

रसिकप्रिया में केशव ने अन्यान्य रसों को भी शृङ्गार के अन्तर्गत ही करने का प्रयत्न किया है पर इसमें वे सफल न हो सके। जान पड़ता है कि उनने रसों के नाम सुन लिए थे पर उनके रहस्य को हृदयङ्गम नहीं कर पाए थे। कविप्रिया में रसवत् अलङ्कार के अन्तर्गत रसों को स्थान दिया है पर जो उदाहरण दिये गये हैं उनमें से कई-एक अशुद्ध हैं।

कविप्रिया में बीभत्स रस का यह उदाहरण दिया है—

सिगरे नरनायक, असुर, विनायक, राक्षसपति हिय हारि गये।
काहू न चढ़ायो, थल न छुड़ायो, टरयो न टारयो, भीत भये॥
इन राजकुमारनि अति सकुमारनि लै आये हौ पैज करै।
व्रत भंग हमारो भयो, तुम्हारो, रिखि तप-तेज न जानि परै॥

कहना न होगा कि बीभत्स इस उदाहरण के निकट से भी नहीं निकलता।

इसी तरह केशव ने शायद सुन लिया था या पढ़ लिया था कि शृङ्गार रसराज है। फिर क्या था! उनने अन्यान्य रसों को शृङ्गार के अन्तर्गत लिख मारा —

हास्य रस का उनने यह उदाहरण दिया है—

हरैं-हरैं हँसि नेकु, चतुर चपल-नैनी,
चित चकचौंवे मेरे मदनगोपाल को ॥

कवि ने शायद समझ लिया कि हँसी शब्द आ जाने से ही हास्यरस हो गया। यह उदाहरण वास्तव में शृङ्गार का ही है।

भयानक रस का उदाहरण यह है—
ऐसे में हौं कैसे जाऊँ, दूरि हू वों देखो जाइ,
काम की कमान सी चढ़ाइ भौंह राखो है॥

इस उदाहरण में भी वास्तव में शृंगार की ही प्रधानता है।

शृंगार के वाद केशव का प्रधान रस वीर है। इस रस का वर्णन उनने बहुत अच्छा किया है। प्रताप, ऐश्वर्य, वीरता, आतंक इत्यादि का वर्णन करने में केशवदासजी बहुत ही सफल हुए हैं। राज-दरबार में रहने वाले कवि के लिए यह स्वाभाविक ही था।

रतनबावनी की रचना डिंगल-काव्य के ढंग पर हुई है। वह दोहा और छप्पय छन्दों में लिखी गयी है। भाषा में द्वित्त और संयुक्त वर्णप्रधान शब्दों की योजना हुई है। वास्तविक युद्ध का वर्णन उसमें बहुत कम है फिर भी वीरोल्लास का अच्छा चित्रण है।

रतनसेन कह्य बात, सूर सामंत सुनिज्जिय।
करहु पैज पन धारि, मारि सामंतन लिज्जिय॥
वरिय स्वर्ग अच्छरिय, हरहु रिपु-गर्व सर्व अब।
जुरि करि संगर आजु, सूर-मंडल भेदहु सब॥
मधुसाह-नंद इमि उच्चरइ, खंड खंड पिंडहि करौं।
कट्टौं सु-दंत हथियान के, मर्दौं दल, यह पन धरौं॥

*　　　*　　　*

गयी भूमि पुनि फिरहि, वेलि पुनि जमै फरे तें।
फल फूले तें लगहि, फूल फूलंत भरे तें॥
केसव, विद्या बिकट निकट बिसरे तें आवै।
बहुरि होई धन-धर्म, गयी संपति पुनि पावै॥
फिरि होई सुभाव सुसील मति. जगत गीत यह गाइयै।
प्रान गये फिरि-फिरि मिलहि, पति न, गये पति, पाइयै।

*　　　*　　　*

रुपे सूर-सामंत रन, लरहिं प्रचारि-प्रचारि।
पिच्छल पग नहिं चलहिं कोउ, जूझत चलहिं अगारि।

*　　　*　　　*

मरन धारि मन लियौ वीर मधुकर-सुत आयो।
विचल नृपति सब म्लेच्छ देखि दल, धर्म लजायो॥
कटु कुभख्ख सब कारिय कुंवर रुप्पहु जुरि जंगहि।
तिल-तिल तन कट्टियव मुरकि फेरौ नहि अंगहि॥
कहि केसव तन बिन सीस ह्वै अतुल पराक्रम कमंध किय
सोइ रतनसेन मधुसाह-सुव तत्र कृपाण दुहुं हत्थ लिय।

रामचन्द्रिका के युद्ध-प्रकरण वीर रस के बहुत अच्छे उदाहरण हैं। वहां भाषा में अपूर्व ओज-पूर्ण प्रवाह देखने को मिलता है। रावण की ओर से योद्धा जब युद्ध-भूमि में आते हैं तो उनके आतंक का बड़ा ही ओजस्वी चित्रण किया गया है। मकराक्ष के आतंक का चित्र देखिए—

कोदंड हाथ, रघुनाथ सँभारि लीजै।
भागे सबै समर यूथप, दृष्टि दीजै॥
बेटा बलिष्ट खर को मकराच्छ आयो।
संहार-काल जनु काल कराल धायो॥
सुग्रीव अंगद बली हनुमन्त रोक्यो
रोक्यो रह्यो न, रघुवीर जहीं विलोक्यो॥
मार्‍यो विभीखन, गदा उर जोर ठेली।
काली समान भुज लछमन कंठ मेली।

लंका के युद्धों में वास्तविक युद्ध का वर्णन कवि ने बहुत कम किया है। यह कमी लव-कुश के युद्धों में पूरी हो जाती है। वहां पर कवि ने परस्पर अमर्षपूर्ण कथोपकथन और उग्रवचनों की योजना भी की है। लव और कुश बाणों से शरीर पर ही वार नहीं करते कटूक्तियों से हृदय पर भी प्रहार करते हैं।—

वीर रस के सफल चित्रण के लिए न तो भाषा विशेष की आवश्यकता है और न छंद-विशेष की। यह बात नहीं कि संयुक्त वर्ण-प्रधानभाषा ही वीर-रस के उपयुक्त है। न यही कि छप्पय छन्द का ही उस पर एकाधिकार है, सब कुछ कवि की प्रतिभा पर निर्भर करता है। प्रतिभाशाली कवि मधुर कही जाने वाली

ब्रजभाषा में भी उसी प्रकार वीर रस को भर सकता है जिस प्रकार डिङ्गल में। केशव के युद्ध-वर्णन इस बात के सुन्दर उदाहरण हैं।

रौद्र रस के उदाहरणों के लिए राम-क्रोध के दो प्रसंग देखिए। पहला प्रसंग राम-परशुराम-संवाद का है। परशुराम के सब प्रकार के वचनों को राम सहन करते चले जाते हैं पर जब परशुराम उनके गुरु विश्वामित्र पर ही आक्षेप कर बैठते हैं तो यह गुरु-निन्दा उन्हें सहन नहीं होती। वे क्रुद्ध होकर कह उठते हैं—

> भगन भयो हर-धनुख, साल तुम को अब सालै।
> बृथा होइ बिधि-सृष्टि, ईस आसन तें चालै॥
> सकल शोक संहरहिं, सेस सिर तें धर डारै।
> सप्त सिन्धु मिलि जाहिं, होहिं सब ही तम भारै॥
> अति अमल जोति नारायनी, कहि केसव, बुड़ि जाहि बरु।
> भृगुनन्द, सम्हारु कुठार, मैं कियो सरासन जुक्त सरु॥

भाषा और छन्द दोनों ही यहाँ भाव के अनुकूल हुए हैं।

दूसरा प्रसंग लक्ष्मण-मूर्छा के समय का है। राम विलाप कर रहे हैं। विभीषण कहते हैं कि यदि सूर्य उदय हो गया तो फिर लक्ष्मण के जीवित रहने की संभावना नहीं रहेगी, इस पर राम क्रुद्ध हो उठते हैं—

> करि आदित्य अदृस्ट, नस्ट जम करौं अस्ट बसु।
> रुद्रन बोरि समुद्र, करौं गंधर्व सर्व पसु॥

वाँधत अवेर कुवेर वलिहिं गहि देऊँ इन्द्र अव।
विद्याधरन अविद्य करौं, विन सिद्धि सिद्ध सव॥

निजु होइ दासि दिति की अदिति, अनिल अनल मिटि जाइ जल।
सुनि सूर-ज, सूरज उदित हीं करौं असुर संसार वल॥

देवताओं के उद्धार के लिये जो राम इतने कष्ट सहते आये वही राम उन्हीं देवताओं का नाश कर संसार में असुरों का प्रावल्य स्थापित करने को कह रहे हैं। क्रोध के आवेश में मनुष्य सर्वथा हिताहितज्ञान-शून्य हो जाता है। अपराधी के साथ निरपराधियों को भी पीस डालने को तय्यार हो जाता है।

राम-परशुराम-संवाद प्रसंग में परशुराम के क्रोध के भी कई चित्र कवि ने अंकित किये हैं—

(१)

वोरौं सवै रघु-वंस कुठार की धार में वार न वाजि स-रत्थहिं
वान की वायु उड़ाइ कै लच्छन, लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं॥
रामहिं वाम-समेत पठै वन, कोप के भार में भूँजो भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तो आजु अनाथ करौं दसरत्थहिं॥

(२)

क्रूर कुठार, निहारि तजे, फल ताको यहै जो हियो जरई।
आजु तें केवल तो को महाधिक, छत्रिन पे जो दया करई॥

(३)

अवरे जे छत्रिय छुद्र भू-तल, सोधि-सोधि सँहारि हौं।
अव वाल वृद्ध न ज्वान छांडहुं, धर्म निर्दय पारि हौं॥

भयानक रस के नीचे लिखे उदाहरण में परशुराम के आतङ्क का सुन्दर चित्रण है—

मत्त दंति अमत्त ह्वै गये देखि-देखि न गज्जहीं।
ठौर-ठौर सुदेस केसव दुन्दुभी नहिं बज्जहीं॥
डारि-डारि हथ्यार सूर जु जीव लै-लै भज्जहीं।
काटि कैं तन-त्रान अकै नारि-वेखनि सज्जहीं॥

वीभत्सररस के केशव ने जो उदाहरण दिए हैं वे शृङ्गार का मिश्रण होने के कारण, न वीभत्स के रह गए हैं न शृङ्गार के। वीभत्स और शृङ्गार परस्पर विरोधी हैं।

करुण का चित्रण केशव ने बहुत कम किया है। रामकथा में करुण के उपयुक्त अवसरों की कमी नहीं है पर केशव ऐसे सब स्थलों को प्रायः छोड़ते गए हैं। फिर भी दो-चार बहुत सुन्दर चित्र देखने को मिलेंगे।

जब विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को लेकर जाते हैं तो दशरथ की अवस्था का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

राम चलत नृप के जुग लोचन।
वारि-भरित भये वारिद रोचन॥

पाँयनि परि रिसि के, साज मौनहि।
केसव, उठि गये भीतर भौनहि॥

यहाँ राजा के हृद्-गत गहरे शोक की व्यञ्जना कवि ने शब्दों द्वारा न करके उनके मौन द्वारा ही की है। राजा के मौन द्वारा

उनके हृदय की गम्भीर वेदना जितनी व्यक्त हो रही है उतनी शब्दों के द्वारा क्या कभी व्यक्त हो सकती थी ?

तब पूछियो रघुराइ।
सुख है पिता-तन, माइ ?
तब पुत्र को मुख जोइ।
क्रम तें उठीं सब रोइ॥

कितना स्वाभाविक चित्रण है। माताओं के हृदय-स्थित शोक की दारुणता की व्याख्या जितनी मौन के द्वारा हो रही है उतनी शब्दों के द्वारा किसी प्रकार न हो पाती।

लक्ष्मण की मूर्छा के अवसर पर राम के शोक का चित्रण भी भाव-पूर्ण है—

लक्ष्मन राम जहीं अवलोक्यो।
नैनन तें न रह्यो जल रोक्यो॥

बारक, लक्ष्मन, मोहि बिलोको।
मो कहँ प्रान चले तजि, रोको॥

हौं सुमिरौं गुन केतिक, तेरे।
सोदर पुत्र सहायक मेरे॥

लोचन—बाहु तुही धनु मेरो।
तू बल—बिक्रम, बारक हेरो॥

तू बिन हौं पल प्रान न राखौं।
सत्य कहौं, कछु झूठ न भाखौं॥

मोहि रही इतनी मन सँका।
देन न पाइ बिभीखन लँका॥

बोलि उठो, प्रभु को पन पारो।
नातरु होत है मो मुख कारो॥

ऐसा अवसर रावण के सामने भी आता है। मेघनाद के मारे जाने पर उसके हृदय से ये उद्‌गार निकलते हैं—

आजु आदित्य जल पवन पावक प्रबल,
चंद आनंद-मय त्रास जग को हरौ।
गान किन्नर करो, नृत्य गंधर्व-कुल,
जच्छ बिधि लच्छ जच्छ-कर्दम धरौ॥

ब्रह्म-रुद्रादि दै देव त्रयलोक के,
राज को जाइ अभिसेक इंद्रहिं करौ।
आजु सिय-राम दै लंक कुल-दूखनहिं,
जग्य को जाइ सर्वग्य बिप्रन बरौ॥

प्रतापी पुत्र मेघनाद के बिना आज रावण को कहीं आनन्द नहीं रह गया। समस्त त्रैलोक्य के प्रभुत्व से भी आज उसे विरक्ति हो उठी है। कितना मनोवैज्ञानिक चित्र है!

हास्य में परिहास के उदाहरण द्रष्टव्य हैं। इनमें भी शृङ्गार मिश्रित है। पर शृंगार और हास्य परस्पर मित्र हैं, विरोधी नहीं प्रङ्गानुसार दोनों रस मुख्य हो सकते हैं।

कृष्ण गोपियों का गोरस छीनकर, उनकी मटकियाँ फोड़ कर आदि अनेक प्रकारों से उन्हें बहुत तङ्ग किया करते थे। एक बार एक गोपी ने उन्हें खूब ही छकाया—

सखि, वात सुनो इक मोहन की, निकसी मटुकी सिर रीती लकै।
पुनि बाँधि लयी सु नये नतना, रु कहूँ-कहूँ बुंद करी छलकै॥
निकसी उहि गैल, हुते जहँ मोहन, लीनी उतारि जवै चलकै।
पतुकी धरि स्याम खिसाइ रहे, उत ग्वारि हँसी मुख आंचल कै॥

नीचे के उदाहरण में राधा की सखियाँ मिलकर राधा के साथ परिहास करती हैं—

आयी है एक महावन तें तिय, गावत मानो गिरा पगु धारी।
सुन्दरता जनु काम की कामिनी; बोलि-कह्यो वृखभानु-दुलारी॥
चोंपि कै ल्यायी गोपालहिं पै, अकुलाइ मिली उठि सादर भारी।
केसव, भेंटत ही भरि अंक हँसी सव कीक दै गोप-कुमारी॥

अद्भुत का यह उदाहरण लीजिये—

लव-कुश के पराक्रम को देखकर विस्मित हनुमान कहते हैं—

नाम-वरण वरण लघु, वेस लघु, कहत रीझि हनुमन्त।
इतौ वड़ो विक्रम कियो, जीत्यौ जुद्ध अनन्त॥

शांतरस के उदाहरण विज्ञानगीता और रामचन्द्रिका के राम-कृत राज्यश्री-निन्दा प्रकरण में देखे जा सकते हैं (सङ्कलन के पद्य देखिये)।

केशव के रसों और भावों के उदाहरणों में स्व शब्द-वाच्यत्व (रस या भाव का नाम आना) दोष बहुत अधिक पाया जाता है पर यह दोष हिन्दी के सभी कवियों में, सूर और तुलसी तक में, खूब पाया जाता है, अतः केशव को इस सम्बन्ध में दोष नहीं दिया जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि इससे भाव के आस्वाद को बहुत हानि पहुंचती है।

२—प्रबन्ध-कवि केशव

केशवदास ने, दो प्रबन्ध-काव्य लिखे—वीरसिंहदेव-चरित और रामचन्द्रिका। इनमें वीरसिंहदेव चरित बहुत साधारण रचना है। उसे काव्य-कोटि में नहीं रखा जा सकता। उसे प्रबन्ध-काव्य न कहकर साधारण इतिवृत्ति या आख्यान कहना अधिक उपयुक्त होगा।

रामचन्द्रिका को महाकाव्य कहा गया है। वह सर्गबद्ध काव्य है। इसका वृत्त इतिहासोद्भव है। धीरोदात्त क्षत्रिय राम उसके नायक हैं। प्रातः काल, संध्या, सूर्य, चन्द्र, ऋतु, मृगया, विहार, शैल, वन, सागर, रणप्रयाण, सेना, युद्ध आदि के वर्णन स्थान स्थान पर आये हैं। विविध रसों का यथायोग्य सन्निवेश हुआ है। आठ से अधिक सर्ग हैं।

इस प्रकार महाकाव्य के प्रायः सभी वाह्य लक्षण रामचन्द्रिका में पाये जाते हैं (बाह्य लक्षणों में अेक ही अैसा है जो नहीं पाया जाता वह है सर्गों की अेक-वृत्त-मयता)। परन्तु महाकाव्य

का जो जीवन तत्व है वही रामचन्द्रिका में नहीं मिलता। जैसा कि कहा जा चुका है केशव वस्तुतः मुक्तक-कवि हैं, प्रबन्ध कवि नहीं। प्रबन्ध-कवि के रूप में सफलता लाभ करने में वे असमर्थ हुए हैं। पर साथ ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि इनमें प्रबन्ध-काव्य लिखने की क्षमता थी ही नहीं। संस्कृत ग्रन्थों के अत्यधिक अनुसरण ने ही इनको सफलता प्राप्त नहीं करने दी। जो अंश इनने बाह्य-प्रभाव से मुक्त रहते हुए लिखे हैं उनमें उन्हें अच्छी सफलता मिली है।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं रामाश्वमेध प्रकरण इसका उदाहरण है। यदि सारा काव्य इनने इसी शैली में लिखा होता तो रामचन्द्रिका एक बहुत सुन्दर प्रबन्ध-काव्य हुआ होता। तुलसी ने भी संस्कृत से बहुत कुछ लिया पर उनने अनुकरण नहीं किया। वे सफल हुए। केशव ने अपनी प्रतिभा से काम न लेकर अनुकरण पर भरोसा रखा। वे असफल हुये।

प्रबन्धकाव्य में प्रबन्ध के दो भेद हैं—(१) इतिवृत्तात्मक और (२) रसात्मक। इतिवृत्ति का उद्देश्य कहानी कहना होता है। वह प्रबन्ध की धारा को आगे बढ़ाता है। प्रबन्ध के रसात्मक स्थल ही उसे काव्य का रूप देते हैं। उनके बिना कोरा इतिवृत्त कहानी मात्र है। इतिवृत्त कौतूहल या जिज्ञासा को तृप्त करता है, वह हृदय को मग्न नहीं कर सकता। वास्तव में महा-काव्य इन्हीं रसात्मक स्थलों की समष्टि है। इतिवृत्ति की सत्ता प्रबन्ध धारा को इन्हीं स्थलों तक पहुंचाने के लिए है।

प्रबन्धकार कवि का कर्त्तव्य कथा के ऐसे ही रसात्मक स्थलों को चुन लेना है। इसी चुनाव में उसकी प्रतिभा का परिचय

मिलता है। इसके लिये कवि वा भावुक होना आवश्यक है। केशव में इसी भावुकता की कमी दिखायी पड़ती है। राम कथा में मर्मस्पर्शी रसात्मक स्थलों की कमी नहीं—वह उनसे भरी है। पर केशव ने ऐसे अंशों को या तो छोड़ दिया है या उनका बहुत ही चलता वर्णन—उल्लेख मात्र—किया है (या अपनी अलङ्कारों की पिटारी खोलकर बैठ गये हैं जो बेसुरे राग की भाँति बड़ी ही अखरती है)। अयोध्या कांड की कथा रामायण भर में सब से अधिक भावपूर्ण है पर केशव ने सब से संक्षिप्त और चलता वर्णन इसी कांड का किया है। रामचन्द्रिका में भाव के प्रति कवि की अत्यन्त उपेक्षा देख पड़ती है।

महाकाव्य जीवन का अेक पूर्ण चित्र उपस्थित करता है। उसमें इतिवृत्त की गति इस प्रकार होनी चाहिए कि जीवन की बहुत सी दशाअें उसके भीतर पड़ जायँ। इसके लिअे आवश्यक है कि कवि का जीवन का निरीक्षण विस्तृत हो। केशव ने जीवन-निरीक्षण का परिचय दिया है अवश्य पर वह विस्तृत नहीं। तुलसी ने जीवन की विविध परिस्थितियों का जैसा वर्णन किया है वैसा केशव ने नहीं। उनके द्वारा वर्णित जीवन में जीवन की बहुत थोड़ी दशाओं का समावेश हुआ है।

प्रबंध के इतिवृत्तात्मक अंश का सम्यक निर्वाह भी केशव नहीं कर सके। प्रबंध-काव्य के लिअे कथा का सुसम्बद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। अेक प्रसङ्ग से दूसरे प्रसङ्ग की शृङ्खला बराबर लगी हुई होनी चाहिए, प्रबन्ध की धारा कहीं पर टूटनी नहीं चाहिअे। 'प्रबंध बँधा हुआ होना चाहिअे, उसमें कथानक की जंजीर में की सब कड़ियों का स्पष्ट दर्शन होना चाहिअे। नाटक में अगर बीच-बीच की कड़ियाँ छूटती जायँ तो भी काम

चल सकता है, किंतु प्रबंध में नहीं।'

रामचन्द्रिका में कथा-प्रवाह जगह-जगह खण्डित दिखायी पड़ता है। अनेक स्थानों पर कवि होने वाली घटनाओं के कारणों का कोई उल्लेख नहीं करता। साथ ही कवि ने प्रबंध-काव्य और दृश्य-काव्य दोनों का मिश्रण सा करना चाहा है जिससे सम्वादों में और अन्यत्र भी कहीं-कहीं वक्ताओं के नामों का अध्याहार करना पड़ता है। यह नाटकीय शैली प्रबंध की धारा के लिये हानिकर हुई है।

छन्दों के शीघ्र-शीघ्र बदलने में भी कथा के प्रवाह में बाधा डाली है।

कथा की गति में बीच-बीच में बहुत लम्बे-लम्बे विराम आये हैं—वर्णनों के रूप में। ये वर्णन प्रसङ्गगत वस्तुओं या स्थानों के स्वरूप ब्यौरे, या विशेषता का स्पष्टीकरण नहीं करते। वे अलङ्कार प्रधान होते हैं। परिस्थिति-चित्रण या भावोत्पत्ति में उनसे कोई सहायता नहीं मिलती। उनका विस्तार प्रायः अखरने लगता है। प्रबंध-काव्य की दृष्टि से वे व्यर्थ से हैं।

अन्तर्जगत और बाह्यजगत दोनों का ही रामचन्द्रिका में अभाव है। इस अभाव के कारण रामचन्द्रिका की कथा में कहीं भी आगे बढ़ने की, अग्रसर होने की, सामर्थ्य नहीं दिखायी देती। इसमें कार्य-व्यापार बिलकुल नहीं है। केशव के लम्बे-चौड़े वर्णनों के बाद जहाँ कहीं व्यापार दिखाने का अवसर आता है वहाँ वे एक दम बड़ी सफाई से पत्ता काट जाते हैं।'

'जब कभी लम्बे-चौड़े वर्णन या सम्वाद के बाद कथा कहने का मौका आता है तो केशवदासजी व्यापार की अेक संक्षिप्त सी

सूचना मात्र देकर फौरन अलङ्कार-क्रीड़ा की किसी दूसरी रङ्ग-स्थली में जा उतरते हैं। कथा उनकी दृष्टि में नितांत गौण चीज़ है।

रामचन्द्रिका पढ़ते समय सुसम्बद्ध और सुगठित प्रबन्ध-काव्य प्रतीत न हो कर फुटकर वर्णनों और सम्वादों का संग्रह सी जान पड़ती है।

रामचन्द्रिका में आये हुये सम्वाद स्वतन्त्र रूप से अच्छे हैं पर कई एक जो लम्बे है, प्रबन्ध-काव्य की दृष्टि से अच्छे नहीं कहे जा सकते।

केशव अपने सम्वादों को व्यर्थ ही बढ़ा देते हैं। वे कथा-प्रसंग में उखड़े-उखड़े से लगते हैं। वाण-रावण-सम्वाद का अन्त असफल है।

चरित्र-चित्रण जो प्रबन्ध-काव्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्त्व है, कर सकना कठिन है। केशव ने चरित्रों में अपनी ओर से कहीं-कहीं विशेषताएँ भरी हैं इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पर केशव में चरित्र-चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं दिखाई देता। चरित्रों के विकास को देखने की आशा करना ही व्यर्थ है। उनके चरित्रों की रेखाएँ स्पष्ट नहीं। यदि रामायण-द्वारा वे चरित्र हमारे मानस में प्रतिष्ठित न होते तो केवल केशव के वर्णन द्वारा उनकी स्पष्ट भावना नहीं कर पाते। सीता-निर्वासन के समय राम का चरित्र अपने पूर्व के चरित्र से अनमेल सा देख पड़ता है।

वर्णनों का अनौचित्य जगह-जगह खटकता है। भरत के वन-गमन के समय उनकी सेना का वीररसात्मक वर्णन प्रसंग को देखते हुये अत्यन्त अनुचित है।

कवि ने कई-एक स्थानों पर शुष्क उपदेशों को उन्हें रसात्मक रूप दिये विना ही, घुसेड़ा है जो कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक लम्बे हो गये हैं। वे अस्थानस्थित लगते हैं। राम का कौशिल्या को पातिव्रत धर्म का लम्बा उपदेश देना अनौचित्यपूर्ण है। वहीं पर विधवा-कर्त्तव्यों का वर्णन अनुचित होने के साथ ही साथ अमंगल-व्यञ्जक भी है।

तुलसी ने भी पतिव्रत धर्म का उपदेश कराया है, पर उचित प्रसंग पर उचित वक्ता द्वारा उपयुक्त पात्र को। अनसूया अधिकारी वक्ता है और सीता उपयुक्त पात्रा। अतः यह उपदेश खटकता नहीं। राम के राज्यविषेक के पूर्व राम द्वारा कृत राज-श्री-निन्दा और विषयोपहास भी प्रसंग के अनुकूल नहीं।

प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से सुन्दर और लङ्का काँडों के प्रसंग अपेक्षा-कृत अच्छे बने हैं। पर सब से श्रेष्ठ अंश है रामाश्वमेध प्रकरण। कथानक, चरित्र, संवाद आदि प्रत्येक दृष्टि से वह सफल प्रबन्ध काव्य का उदाहरण है। रामचन्द्रिका में यदि कहीं कथा दीखती है; कहीं भावुकता, सरसता, कौतूहल या प्रवाह दिखायी देता है। कहीं स्वाभाविक वस्तु-वर्णन और चरित्र-चित्रण है तो वह लव-कुश युद्ध में। रामचन्द्रिका का सब से श्रेष्ठ अंश इस युद्ध का वर्णन ही है।

३—केशव का चरित्र-चित्रण

प्रबन्ध काव्य में चरित्र-चित्रण सब से महत्वपूर्ण है। परन्तु केशव ने इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। चरित्र-चित्रण केशव का उद्देश्य नहीं। जैसा कि ऊपर कह आये हैं रामचन्द्रिका

में न तो चरित्रों की रेखाएँ ही स्पष्ट हैं और न व्यापार की कमी के कारण, उनका कोई विकास ही हम देखते हैं।

केशव के चरित्रों में से प्रधान-प्रधान चरित्रों का संक्षिप्त विवेचन नीचे किया जाता है। विवेचन में मुख्यतया वही बातें ली गई हैं, जो किसी अंश तक केशव के चरित्रों की विशेषताएँ कही जा सकती हैं।

(१) राम—राम धीर वीर गम्भीर हैं। स्त्री होने के कारण ताड़का को मारते हुए उन्हें संकोच होता है। परशुराम के साथ उनकी बातचीत शिष्टतापूर्ण और विनय से युक्त है। पर जब परशुराम उनके गुरु की निन्दा करने लगते हैं तो उन्हें क्रोध आ जाता है और वे परशुराम को लड़ने के लिए ललकार उठते हैं। पिता के वचन की रक्षा के लिए तुरन्त वन को चल देते हैं। वन जाते समय लक्ष्मण को अयोध्या में ही रहने के लिए समझाते हुए राम कहते हैं—

आइ भरत्थ कहा धौं करैं, जिय भाय गुनौ।
जौ दुख देइँ तौ लै उरगौ, यह बात सुनौ॥

आलोचकों का कथन है कि यह कहलाकर कवि ने राम के चरित्र-सौंदर्य को नष्ट कर दिया है, जिस भरत पर उनका सब से अधिक प्रेम है[१] उन्हीं के सम्बन्ध में उनका इस प्रकार सन्देह करना राम के चरित्र को गिराता है। हमारी सम्मति में यह कथन अर्थवाद मात्र है। इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि

१ अरु जदपि अनुज तीन्यौं समान।
तदपि भरत भावत निदान॥ (रामचन्द्रिका ११।७५)

राम भरत पर वास्तव में सन्देह करते रहे हैं पर यह कह कर वे लक्ष्मण को अयोध्या में रहने के लिए राजी करना चाहते हैं। लक्ष्मण को अयोध्या में रखना ही उनका यहाँ पर मुख्य उद्देश्य है।

केशव ने राम के वालि-वध का समर्थन नहीं किया है। उसका अनौचित्य उनने राम के मुख से स्वीकार कराया है—

यह सांटों लै कृष्णावतार।
तब ह्वैहौ तुम संसार पार॥

सीता के निर्वासन के समय राम का चरित्र अेक autocrat शासक का सा हो गया है।

(२) केशव के भरत में तुलसी के भरत की अपेक्षा कुछ कम गम्भीरता दिखाई पड़ती है। चित्रकूट में दशरथ के सम्बन्ध में केशव ने भरत के मुख से जो शब्द कहलाये हैं वे उनके अनुरूप नहीं हुए। गंगा तट पर न उठने का संकल्प करके बैठ जाना दुराग्रह के निकट पहुंच जाता है। सीता का त्याग उन्हें बहुत खटकता है। वे राम से तर्क-वितर्क भी करते हैं पर राम—

मेरी कछू अवहि इच्छा यहै सो हेरि।
मो को हतौ बहुरि बात कहौ जो फेरि॥

कह कर उन्हें चुप कर देते हैं, लव-कुश-युद्ध में लक्ष्मण की मूर्च्छा पर वे कहते हैं।

पातक कौन तजी तुम सीता।
पावन होत सुने जग गीता॥

दोस-विहीनहिं दोस लगावै।
सो, प्रभु, यह फल काहे न पावै ॥

(३) केशव की सीता में कोई विशेष बात नहीं। हां,
'श्रम तेऊ हरैं तिनको, कह केसव, चंचल चारु दृगंचल सों।
यह कथन उनकी मर्यादा के अनुकूल नहीं और खटकता है।

(४) कौशल्या का चरित्र उतना उदात्त नहीं जितना तुलसी का है। तुलसी की कौशल्या 'लोक-संग्रह का भाव रखते हुए छाती पर पत्थर रख राम को वन जाने की आज्ञा देती है।' पर केशव की कौशल्या पुत्र-प्रेम जनित विह्वलता से अभिभूत हो जाती है। इस विह्वलता के अतिरेक के कारण उनके मुख से ऐसे वाक्य निकल पड़ते हैं जो साधारण अवस्था में वे कभी न निकालतीं। भाव के आवेश में ऐसा होना स्वाभाविक है।

(५) कैकेयी का चरित्र मंथरा के प्रसंग को छोड़ देने से विकृत रूप में सामने आता है। राम को वन भेजने का कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता। ऐसा जान पड़ता है कि कैकेयी को राम के प्रति स्वाभाविक द्वेष रहा होगा या वह बिना कारण ही अकस्मात राम के विरुद्ध हो गयी।

(६) रावण की प्रधान विशेषता उसकी कूट-नीतिज्ञता है। अंगद-रावण-संवाद और रावण-बाण-संवाद दोनों में वह दिखाई पड़ती है। स्वयंवर-प्रसंग में उसके चरित्र में क्षुद्रता के भी दर्शन होते हैं। वह अहम्मन्य भी है। हठी ऐसा कि मंत्रियों की युक्ति युक्त मंत्रणा को भी बार बार तिरस्कृत करता है। उसका अहंकार

अेक वार नीचा देखता है जब वह राम के पास सन्धि-सन्देश लेकर दूत को भेजता है पर मन्दोदरी के सामने जब यह वात प्रकट हो जाती है तो उसका अहंकार फिर जाग उठता है। स्त्री के सामने कोई पुरुष होकर अपनी निर्वलता कैसे स्वीकार कर सकता है। राम इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को जानते थे इसलिए उनने दूत से कहा कि हमारा उत्तर रावण को मन्दोदरी की उपस्थिति में सुनाना।

(७) मन्दोदरी रावण के सीता-हरण को अनुचित समझ कर उसे बराबर समझाती है। पर अन्त में जब समस्त बन्धु-बांधवों के मारे जाने पर रावण-कृत सन्धि चर्चा की वात जानती है। तो उसका क्षत्रियत्व जाग उठता है और वह रावण को बुरी तरह फटकारती है—

> तब सब कहि हारे, राम को दूत आयो।
> अब समुझ परी. जौ पुत्र भैया जुझायो॥
> दसमुख, सुख जीजै, राम सों हौं लरौं यों।
> हरि-हर सब हारे देवि दुर्गा लरी ज्यों॥

(८) अंगद चतुर और अत्यन्त निडर है। रावण के दरवार के आतंक से वह तनिक भी प्रभावित नहीं होता। रावण की कूट चालों में भी वह नहीं आता। राम ने उसके पिता को मारा था इस बात को वह भूलता नहीं, पर वदला लेने के लिये रावण की सहायता उसे वांछनीय नहीं। वह अपने ही वल से वदला लेने की इच्छा रखता है और राज्याभिषेक के उपरान्त राम को लड़ने के लिये ललकारता है।

(६) हनुमान आदर्श सेवक हैं। उनमें वीरता के साथ चातुर्य का सुन्दर मेल दिखायी पड़ता है। सेवक की सब से बड़ी विशेषता यह है कि अेक कार्य को भेजा जाय और साथ में और भी अनेक कार्य कर आये। हनुमान इसी प्रकार के सेवक हैं। राम कहते हैं–

गये अेक काज को अनेक करि आये हौ।

सीता के परित्याग का दुःख हनुमान के हृदय में भी है। राम के आज्ञाकारी सेवक होने पर भी उसका हृदय सीता के साथ है। माता सीता के बिना वे अपना सब उत्साह और पराक्रम खो बैठे हैं। लव-कुश युद्ध के समय भरत उनसे युद्ध करने को कहते हैं—

हनुमन्त, दुरंत नदी अब नाखो।
रघुनाथ—सहोदर—जो अभिलाखो॥

तब जो तुम सिंधुहि नाँघि गये जू।
अब नाँघहु काहे न, भीत भये जू॥

पर फिर भी हनुमान युद्धोत्साह नहीं दिखाते। वे उत्तर देते हैं—

सीता—पद सम्मुख हुते, गयो सिंधु के पार।
विमुख भये क्यों जाहुं तरि, सुनो भरत, यहि बार॥

और उसने युद्ध किया नहीं।

(१०) लव-कुश—दोनों बालक अद्भुत पराक्रमी हैं। उनका उत्साह, उनका साहस असीम है। युद्ध में उन्हें कोई पराभूत नहीं कर सकता। जिसने शस्त्र उठाया उसीने प्राणों से हाथ

धोया। राम, हनुमान और जाम्वन्त यही तीन जीवित बचे। क्योंकि इनने युद्ध नहीं किया। कुश अधिक गम्भीर है, लव अधिक चञ्चल। लक्ष्मण, भरत और राम की बातों का उत्तर कुश देता है। उसके उत्तर उसकी गम्भीरता को सूचित करते हैं। उधर सुग्रीव, विभीषण, अङ्गद आदि को लव उत्तर देता है जो बड़े ही कटु व्यंग से परिपूर्ण हैं।

अद्भुत पराक्रमी होने पर भी लव-कुश बालक ही हैं। केशव ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को नहीं भुलाया है। युद्ध के पश्चात् जब लव-कुश लौटते हैं तो योद्धाओं के सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण इकट्ठे कर ले जाते हैं। हनुमान और जाम्बन्त को भी खेल के लिये, बाँध कर ले चलते हैं। उनका अद्भुत पराक्रम उनकी बालोचित वृत्ति को दबाकर नहीं रख सका।

४-केशव के संवाद

केशव ने रामचन्द्रिका में जिन सम्वादों की योजना की है उनमें वे सबसे अधिक सफल हुये हैं। ये सम्वाद नाटकीय शैली के हैं और बहुत कुछ संस्कृत नाटकों के अधार पर लिखे गये हैं। उनमें पात्रों के अनुरूप क्रोध, उत्साह आदि की व्यञ्जना भी सुन्दर हैं। उनमें खूब वाग्वैदग्ध्य पाया जाता है। व्यङ्ग की भी अच्छी बहार मिलती है। इस प्रकार उनसे काव्य में अच्छी सजीवता आ गयी है।

केशव ने सम्वाद वहीं रखे हैं हाँ कूटनीति या राजनीतिक दांव-पेचों के चित्र खींचना या पात्रों की नोक-झोंक के दृश्य खड़े करने थे। जहाँ गम्भीर मनोवृत्तियों के चित्रण की आवश्यकता

थी वहाँ वे सम्वादों को बचा गये हैं। तुलसी के सबसे सुन्दर सम्वाद अयोध्या कांड में हैं। केशव ने वहाँ जो संवाद रखे हैं वे नहीं के समान हैं। केशव के सबसे सुन्दर संवाद हैं-रावण-बाण-संवाद, परशुराम प्रसङ्ग का संवाद, रावण-अङ्गद-संवाद तथा लव-कुश-प्रसंग के संवाद। केशव का रावण-अंगद-संवाद तुलसी के रावण-अंगद-संवाद से अधिक उपयुक्त और सुन्दर बना है।

इन संवादों की भाषा में अच्छा प्रवाह पाया जाता है। अल-ङ्कारों की भर्ती न होने के कारण इनमें पर्याप्त स्वाभाविकता है।

केशव के संवादों में कुछ छोटे और कुछ बड़े हैं। छोटे संवादों में से अधिकांश अच्छे बने हैं और अपने उद्देश्य की ठीक पूर्ति करते हैं। राम-भरत संवाद में दशरथ के सम्बन्ध में भरत की उक्ति कुछ खटकती है। इसी प्रकार रावण-मन्दोदरी संवाद में मन्दोदरी की फटकार कुछ अधिक कठोर जान पड़ती है।

रावण-बाण-संवाद, राम-परशुराम संवाद और अंगद-रावण संवाद काफी लम्बे संवाद हैं। ये अपनी परिमाण-सीमा से बहुत आगे बढ़ गये हैं और प्रबन्ध के अन्तर्भूत अङ्ग न मालूम होकर स्वतन्त्र रचना से प्रतीत होने लगते हैं। रावण-बाण का संवाद २६ छन्दों में है और बिलकुल निरुद्देश्य है। जान पड़ता है कवि ने इनको विवाद दिखाने के लिये ही रखा है। इस तरह के विवादपूर्ण सम्वादों में हम प्रायः कहावत में आयी हुई बनियों की लड़ाई का-सा स्वरूप देखते हैं। इनका अन्त भी सफल और स्वाभाविक नहीं हो पाया है। ये सम्वाद वास्तव में संस्कृत नाटकों से अनूदित हैं। नाटक में इनका वैसा अवसान खटकता नहीं पर रामचन्द्रिका नाटक नहीं प्रबन्ध-काव्य है।

केशव के ये सम्वाद जो कथा-प्रसङ्ग में उखड़े-उखड़े से प्रतीत होते हैं अपने स्वतन्त्र रूप में बड़े मनोरञ्जक और कौतूहलवर्धक हैं। रावण और बाण का बगलें झांकना भी स्वतन्त्र सम्वाद में मनोविनोद और चरित्राध्ययन की एक चीज़ है। केशव के सम्वादों में भी नाटकीय प्रभाव पूर्ण रूप से मौजूद रहता है। उनमें चटपटापन, चुलबुलापन, व्यंग और वाग्वैदग्ध्य के समस्त गुण एक साथ दिखाई देते हैं।

कुश-लव और राम की सेना के वीरों में होने वाले सम्वाद केशव के सर्वश्रेष्ठ संवाद हैं। प्रबन्ध के अन्दर वे अच्छी तरह खप जाते हैं। उनमें केशव ने संस्कृत का आधार नहीं लिया यह ध्यान रखने योग्य है। लव-कुश के वाक्य प्रायः छोटे छोटे, तथ्यदर्शी और कार्यक्षिपता के प्रेरक हैं। वे चरित्रचित्रण में भी सहायक होते हैं।

५-केशव के वर्णन

वर्णन के दो विभाग किये जा सकते हैं।

(१) पात्र-स्वरूप-वर्णन, और,
(२) परिस्थिति वर्णन।

पात्रों के स्वरूप का सजीव चित्रण रसानुभूति के लिए अत्यन्त आवश्यक है, नाटक में यह काम अभिनेताओं के द्वारा हो जाता है। प्रबन्ध-काव्य में यह सुविधा नहीं होती अतः कवि का कर्तव्य हो जाता है कि पात्रों के रंग-रूप, आकार-प्रकार, आदि का ऐसा ब्यौरे वाला वर्णन करे कि उनकी मूर्ति साक्षात् खड़ी हुई

सी प्रतीत होने लगे। केसव में पात्र-स्वरूप-चित्रण का प्रयास नहीं के बराबर है। केवल अंक ही दो स्थानों पर उनने किसी अंश तक ऐसा प्रयास किया है। नीचे लिखे पद्य में परशुराम का कुछ ब्यौरा दिया गया है जिससे उनकी मूर्ति को किसी अंश तक हम प्रत्यक्ष करने में समर्थ होते हैं—

कुस-मुद्रिका समिधा स्रुवा कुस औ कमण्डलु को लिये।
कटि मूल स्रोननि तर्कसी, भृगु-लात सी दरसै हिये॥
धनु-बान तिच्छ कुठार, केशव, मेखला मृगचर्म स्यों।
रघुबीर, को यह देखिये रस बीर सात्त्विक धर्म स्यों ?

इसी प्रकार वृद्धा अनसूया का यह वर्णन भी उनकी वृद्धावस्था को प्रत्यक्ष करने में सहायक होते हैं—

सिर सेत विराजै, कीरति राजै जनु केसव तप-बल की।
तनु वलित-पलित,जनु सकल बासना निकरि गयी थल २ की॥
कांपति सुभ ग्रीवा सब-अङ्ग-सींवां, देखत चित्त भुलाहीं।
जनु अपने मन प्रति यह उपदेसति, या जग में कछु नाहीं॥

रूप-वर्णन केशव ने कई स्थानों पर किया है पर उनमें कवि का ध्यान आकृति का ब्यौरा देने की ओर नहीं किन्तु अलङ्कार योजना पर है इसी कारण उनसे आकृति का चित्र खड़ा नहीं होता।

परिस्थिति-चित्रण के अन्तगत प्रकृति-वर्णन और अन्यान्य वस्तुओं तथा व्यापारों का वर्णन आता है।

परिस्थिति-वर्णन करते समय भी कवि का ध्यान सदा अलंकारों की ही ओर रहा है। रामचन्द्रिका के प्रथम प्रकाश में

अयोध्या और उसकी वाटिकाओं आदि का वर्णन करते हुये कवि उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, परिसंख्या, अपह्नुति आदि अलङ्कारों की योजनाओं आदि में ही व्यस्त रहा। तृतीय प्रकाश में तपोवन का वर्णन अलंकार-प्रधान नहीं होने से अच्छा बन पड़ा है। पञ्चम प्रकाश में सूर्योदय का वर्णन, तेरहवें प्रकाश में वर्षा-वर्णन, चौदहवें प्रकाश में लंकादाह का वर्णन, तेरहवें प्रकाश में लङ्का को प्रस्थान करते हुये हनुमान, पन्द्रहवें प्रकाश में सेतुबन्ध का वर्णन और तीसवें प्रकाश में प्रभात का वर्णन अलंकारमय होने पर भी अच्छे हुये हैं।

वर्णनों में कहीं-कहीं उद्वेगजनक बातें भी आ गयी हैं। सूर्योदय के वर्णन में—

> कै सोनित-कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।

यह वीभत्स उपमान सुन्दर भाव को आघात पहुंचाता है।

केशव का मन प्रकृति में रमा हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। प्रकृति के प्रति उनके हृदय में उल्लास नहीं दीख पड़ता। केशव के समुद्र-वर्णन को जायसी के समुद्र-वर्णन से मिलाइये। आकाश-पाताल का अन्तर पायेंगे।

कविप्रिया और विज्ञानगीता में जो ऋतुवर्णन है उनमें श्लेश अलंकार के चमत्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं। हाँ, बारह-मासे के वर्णन में अलंकारों के साथ-साथ प्राकृतिक व्यापारों के भी उल्लेख हैं।

दसवें प्रकाश में भारत की सेना का वीररसात्मक वर्णन परिस्थिति और प्रसंग के अनुकूल न होने से खटकता है।

६-केशव का प्रकृति वर्णन

केशव के प्रकृति-वर्णन के सम्बन्ध में परस्पर-विरोधी रायें हैं। लाला भगवानदीन, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मिश्रबन्धु, रामकुमार वर्मा आदि उसे उच्चकोटि का बताते हैं जब कि रामचन्द्र शुक्ल, पीतांबरदत्त बड़थ्वाल और कृष्णशंकर शुक्ल आदि बहुत ही निकृष्ट। वास्तव में वह दोनों ही प्रकार का है। कहीं वह बहुत भावपूर्ण बन गया है और कहीं कोरा खिलवाड़ हो गया है।

केशव में प्रकृति के प्रति अनुराग, प्रकृति के प्रति तल्लीनता, नहीं मिलती यह सत्य है पर यह बात प्राचीन हिन्दी के प्रायः सभी कवियों पर लागू होती है। संस्कृत के प्राचीन कवियों का सा सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण और भावपूर्ण वर्णन हिन्दी में कहीं भी देखने को नहीं मिलेगा। फिर भी केशव ने प्रकृति की ओर अधिक ध्यान दिया है। यदि अलंकार-प्रियता आड़े न आती तो उनका प्रकृति-वर्णन हिन्दी-कवियों में बहुत सुन्दर हुआ होता।

प्रकृति को काव्य में तीन प्रकार से लाया जा सकता है—

(१) अप्रस्तुत (या अलङ्कारिक) रूप में अर्थात् जब प्रयुक्त अलङ्कारों के उपनामों के रूप में प्राकृतिक पदार्थों या व्यापारों का उपयोग किया जाय।

(२) उद्दीपन रूप अर्थात् जब प्राकृतिक वस्तुओं एवं व्यापारों का उपयोग किसी भाव को उद्दीप्त करने के लिये किया जाय।

(२) प्रस्तुत या आलम्बन रूप में अर्थात् जब प्राकृतिक वस्तुओं एवं व्यापारों का स्वतन्त्र वर्णन हो।

अप्रस्तुत रूप में कवि लोग कमल, चन्द्र, लता, पल्लव, खञ्जन, भ्रमर, मीन आदि प्राकृतिक वस्तुओं को लाते रहे हैं। केशव भी इन्हें लाये हैं। केशव में ऐसे पदार्थों की संख्या अपेक्षाकृत कम मिलेगी। अधिकांश में कमल, चन्द्र आदि अत्यन्त प्रसिद्ध उपमान ही लाये गये हैं जिनका कविजन बराबर प्रयोग करते हैं। नवीन उपमान केशव में कम मिलेंगे। नीचे लिखे उदाहरणों में कवि द्वारा लाये हुये अप्रस्तुत सुन्दर और भावपूर्ण हुये हैं।

काम ही की दुलही सी का के कुल उलही सी।
लहलही ललित लता सी लोल सोहियै॥

इस पंक्ति में 'ऐसा प्रतीत होता है कि लता को उपमान रूप में लाने मात्र ही से कवि सन्तुष्ट नहीं है। लता के प्रति उसके हृदय में जो अनुराग है उसका भी संकेत वह देना चाहता है।

धरे एक बेनी मिलि मैल सारी।
मृनाली मनौ पंक तें काढ़ि डारी॥

यहाँ सीता की वाह्य और आभ्यन्तर दोनों दशाओं के लिये मृणाली उपमान कितना उपयुक्त और मार्मिक है।

उद्दीपन रूप में, और स्वतन्त्र रूप से, प्रकृति वर्णन करने के अनेक अवसर केशव को मिले। पर बहुत कम स्थान ऐसे हैं जहाँ का वर्णन भावपूर्ण हो। अधिकांश वर्णन अलंकार-मय हैं

जिनमें कवि का ध्यान प्रकृति की अपेक्षा अलंकारों की ओर अधिक जान पड़ता है। फिर भी कुछ स्थानों में प्राकृतिक दृश्यों के जो चित्र अङ्कित किये हैं वे प्रभावशाली हुए हैं, उदाहरणार्थ रामचन्द्रिका के तेरहवें प्रकाश में राम द्वारा किया हुआ यह वर्षा-वर्णन—

आस पास तम की छवि छायी।
राति-दिवस कछु जानि न जाई॥
मन्द मन्द धुनि सों घन गाजैं।
तूर तार जनु आवझ बाजैं॥
ठौर ठौर चपला चमकै यों।
इन्द्र लोक तिय नाचति हैं ज्यों॥
सोहैं घन स्यामल घोर घने।
मोहैं तिन में वक-पांति मनै॥
सखावलि पी बहुधा जल सों।
मानो तिन को उगिलैं बल सों॥
सोभा अति सक्र-सरासन में।
नाना द्युति दीसति हैं घन में॥
रतनावलि सी दिवि-द्वार भनो।
वरखागम बांधिय देव मनो॥

* * *

भौंहैं सुरचाप, चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराइ जोति तड़ित रलायी है।

दूर करी सुख दुख सुखमा ससी की, नैन
अमल, कमल-दल दलित निकाई है ॥
केसौदास, प्रबल क-रेनुका गमनहर,
मुकुत सु हंसक-सबद सुखदाय है ।
अम्बर-बलित, मति मोहै नीलकंठ जू की,
कालिका की बरखा हरखि हिय आयी है ॥

अन्तिम पद्य में श्लेष अलङ्कार होने पर भी कवि को कष्ट-कल्पना नहीं करनी पड़ी है और वर्षा के कुछ सुन्दर चित्रों को उपस्थित किया गया है ।

कवि-प्रिया में बारहमासे का वर्णन बहुत अच्छा बना है उदाहरण के लिये भादों का वर्णन यहाँ दिया जाता है—

घोरत घन चहुं ओर घोस-निरघोसहिं मण्डहि ।
धाराधर धरि धरनि मुसलधारा जल छंड़हिं ॥
झिल्ली गन झंकार पवन झुकिझुकि झकझोरत ।
बाघ सिंघ गुंजरत पुञ्ज कुञ्जर तरु तोरत ॥

निसि दिन-बिसेस निरसेस मिटि, जात सु, ओली ओड़िये ।
निज देस पियूस, बिदेस बिस, भादौं भवन न छोड़िये ॥

इस वर्णन में ध्वनि-सौंदर्य भाव के कैसा अनुकूल हुआ है ।

रामचन्द्रिका के तीसवें प्रकाश में प्रातःकाल का यह वर्णन अच्छा हुआ है —

गगन उदित रवि अनन्त मुक्कादिक जोतिवन्त ।
छन-छन छबि-छीन होत लीन पीन तारे ॥

मानहुं परदेस देस अघदोस के प्रवेस
ठौर-ठौर तें बिलात जात भूप भारे।

अमल कमल तजि अमोल मधुप लोल टोल-टोल
बैठत चढ़ि करि-कपोल दान-मान-कारी।
मानहु मुनि-जन ध्यान-बद्ध छोड़ि छोड़ि गृह समृद्ध
सेवत गिरि-गन प्रसिद्ध सिद्धि सिद्धि-धारी॥
तरनि-किरन उदित भयी दीप-जोति मलिन गयी
सदय हृदय बोध उदय ज्यों कुबुद्धि नासै।
चक्रवाक निकट गयो चकई मन मुदित भयी
जैसें निज जोति पाइ जीव जोति भासै॥

अरुन तरनि के विकास अंक दोउ उडु अकास
कलि के से सन्त ईस दिसन अन्त राखे।
दीखत आनन्द-कन्द निसि बन दुति-हीन चंद
ज्यों प्रवीन जुवति-हीन पुरुष दीन भाखै॥
निसिचर चमके विलास हास होत है निरास
सूर के प्रकास त्रास नासत तम भारे।
फूलत सुभ सकल गात असुभ सैल से बिलात
आवत ज्यों सुखद राम नाम मुख तिहारे॥

इसी प्रकार में वसन्त का यह वर्णन भी भावपूर्ण है—

बौरे रसाल-कुल कोमल केलि-काल।
मानो अनंग-ध्वज राजत श्री-बिसाल॥

फूली लवंग लवली ललिता बिलोल।
भूले जहाँ भ्रमर विभ्रम मत्त डोल॥
बोलैं सु-हँस सुक कोकिल केकि-राज।
मानो वसन्त-भट बोलत जुद्ध काज॥
सोहै पराग चहुं भाग उड़ै सुगंध।
जा तें विदेस विरही-जन होत अंध॥
पालास-माल विन पत्र विराजमान।
मानो वसंत दिय कामहि अग्निवान॥

फूलै पलास बिलास-थली बहु, केसवदास, प्रकासत थोरे।
सेस असेस मुखानल की जनु ज्वाल विसाल चली दिवि ओरे॥
किंसुक-श्रीसुक-तुंडन की रुचि राचै रसातल में चित चोरे।
चोंचन चाँपि चहूँ दिसि डोलत चारु चकोर अँगारनि भोरे॥

उक्त वर्णन परिगणन-शैली के हैं जिसमें वर्ण्य दृश्य से सम्बन्ध रखने वाली विविध वस्तुओं के नाम गिना मात्र दिये जाते हैं, दृश्य की सब वस्तुओं का संश्लिष्ट चित्र खड़ा करने का प्रयत्न नहीं होता।

रामचन्द्रिका के ३२ वें प्रकाश में वाटिका का वर्णन है पर वह अलङ्कार-प्रधान है। कवि का ध्यान वाटिका के विविध दृश्यों की अपेक्षा अलङ्कार योजना की ओर अधिक है। प्रस्तुत-अप्रस्तुत के आगे बिलकुल गौण हो गये। ऐसे स्थानों में केवल अलङ्कार का सौंदर्य ही दृष्टिगत होता है।

तीसरे प्रकाश में विश्वामित्र के आश्रम का वर्णन इस प्रकार किया है—

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल वंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर वर॥
ऐला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं।
सारी सुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं॥
सुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त-मयूर-गन।
अति प्रफुल्लित फलित रहै सदा, केसौदास विचित्र वन॥

वर्णन सुन्दर है, नाद-सौंदर्य भी अच्छा है पर देश-विरोध दोष है।

एला, लवंग, सुपारी आदि के पेड़ ठेठ हिमालय के हैं। विहार में वे कहाँ ? यहां केशव ने संस्कृत के कविशिक्षा-विषयक ग्रन्थों का अन्धाधुन्ध अनुसरण किया है जिनके अनुसार आश्रम के वर्णन में इस प्रकार के पेड़ों का वर्णन होना चाहिये। कम से कम ऐसे स्थानों पर कवि अपनी आँख खोलकर चलता तो अच्छा होता।

कहीं-कहीं पर तो कवि प्रकृति-वर्णन करते हुये शब्दों का खिलवाड़ सा कर चला है जो बहुत खटकता है। प्राकृतिक दृश्यों के लिये कवि ऐसे अप्रस्तुत लाया है जिनका उनके साथ कोई साम्य नहीं। केवल श्लेष के आधार पर समता सूचित की गयी है। जैसे ११ वें प्रकाश में दण्डकारण्य का वर्णन (उद्धरण तथा अन्य उदाहरण अलङ्कार-प्रकरण में देखिये)।

७—केशव की भाषा

केशव की रचनाओं की भाषा ब्रजभाषा है। वे बुन्देलखंड के निवासी थे अतः बुन्देलखंडी शब्दों और मुहावरों का प्रयोग भी कई जगह मिलता है।[१] संस्कृत के विद्वान होने के कारण उनकी भाषा पर संस्कृत का प्रभाव भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है। कहीं कहीं तो उनने संस्कृत प्रत्ययों से युक्त शब्दों का प्रयोग भी कर डाला है जैसे—

निजेच्छया भूतल देह धारी।
उरांस अंगद लाज कछू गहो।
लीलयैव हर को धनु सांध्यो।

देवता शब्द का प्रयोग उनने संस्कृत की भाँति स्त्रीलिङ्ग में किया है। रामचन्द्रिका में कुछ छन्द ऐसे भी हैं जिनकी पदावली बिलकुल संस्कृत जैसी है। उसमें उपाध्यायजी के प्रियप्रवास के कई एक छन्दों का पूर्व रूप देखा जा सकता है।[२]

---

१ उदाहरणार्थ—गौरमदाइन, उपदि, गेंडुआ, स्यों, मरूकरि, वेगि दै इत्यादि।

२ जैसे—

सीता सोमन व्याह उत्सव सभा संभार संभावना।
तत्कार्य समग्र व्यग्र मिथिला वासी जना सोमना॥
राजा राजपुरोहितादि सुहृदो मन्त्री महासंप्रदा।
नाना देस समागता नृपगणा पूज्या परा सर्वदा॥

केशव की भाषा में आलोचकों ने अनेक दोष पाए हैं उनकी भाषा कठोर और ऊबड़खाबड़ है, व्याकरण की अशुद्धियाँ उसमें अनेक स्थानों पर पायी जाती हैं और वाक्य-योजना भी जगह-जगह अव्यवस्थित और शिथिल है। वह वैसी कसी हुई नहीं जैसी तुलसी की भाषा है। ये त्रुटियाँ केशव की भाषा में हैं इससे इनकार नहीं किया जा सकता। केशव संस्कृत के धुरंधर पंडित थे। उनका कुल संस्कृतज्ञता के लिऐ प्रसिद्ध था। उनके परिवार में सेवक तक भाषा बोलना नहीं जानते थे। ऐसी परिस्थिति में रहते हुऐ केशव भाषा-लेखन में सौकर्य नहीं प्राप्त कर सके तो कोई आश्चर्य नहीं। फिर भी उनकी कृति में ऐसे अंश प्रचुर हैं जिनकी भाषा प्रवाहपूर्ण है। रसिक प्रिया के अधिकांश छंदों की भाषा सुंदर और प्रवाहमयी है। कवि-प्रिया और रामचन्द्रिका में भी भाषा की दृष्टि से अच्छे छंद पर्याप्त संख्या में मिल सकेंगे।

रामचन्द्रिका की भाषा में जो ऊबड़खाबड़पन और माधुर्य एवं प्रवाह की जो कमी पायी जाती है उसका मुख्य कारण छन्दों की विप्रिवता है। जो छन्द केशव के अपने कहे जा सकते हैं जैसे सवैया, कवित्त, वसन्त तिलका, भुजंगप्रयात आदि उनमें भाषा का प्रवाह भी मिलेगा और माधुर्य तथा ओज भी। हां मतिराम, रसखान और घनानन्द आदि का माधुर्य देखना चाहें तो केशव में सुलभ न होगा।

माधुर्य और प्रसाद-गुणयुक्त भाषा के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

फूलीं लतिका ललित तरुन तन फूले तरुवर।
फूलीं सरिता सुभग सरस सब फूले सरवर॥
फूलीं कामिनि काम-रूप करि कंतन पूजहिं।
सुक-सारी-कुल हँसौ फूलि कोकिल कल कूजहिं॥
कहि केसव, ऐसी फूल महँ फूलहिं सूल न लाइये।
पिय, आपु चलन की का चलो, चित्त न चैत चलाइये॥

ऐक कहे अमल कमल मुख सीताजू को,
ऐक कहैं चंद सम आनन्द को कंद री।
होइ जौ कमल तौ रजनि में न सकुचै री,
चंद जौ तौ बासर न होइ दुति मन्द री।
वासर ही कमल, रजनि ही में चंद,
मुख बासर-हू-रजनि विराजै जग-बंद री।
देखें मुख भावै, अनदेखेंई कमल-चंद,
ता तें मुख मुखै, सखी, कमलौ न चंद री।

केसोदास, दिन राति केतकी की भावै भाँति,
जिय में बसति जाति, नैनन में नलिनी।
माधवी को पियै मद, सूझत न ऐव कहूं,
सेवती सेवन कही सेयी गंध-फलिनी।
और हीं कहति बात, कान्ह, काहे को लजात,
ऐसें तो खिस्याइ सी, जौ होई मन मलिनी।
देखहुँ धौं, प्रानपति निलज अली की गति,
मालति सों मिल्यौ चाहै साथ लीन्हे अलिनी॥

हरित-हरित हार हेरत हियो हिरात,
हारी हौं हरिन-नैनी, हरि न कहूँ लहौं।
वनमाली व्रज पर वरखत वन माली,
वनमाली दूर, दुख केसव कैसे सहौं।
हृदय-कमल नैन देखि कै कमल नैन,
भयी हौं कमल-नैन, और हौं कहा कहौं।
आप-घने घन स्याम घेन ही से होत घन-
स्यामनि के द्यौस घनस्याम विन क्यों रहौं।

संवादों की भाषा खूब चलती हुई है।

दै दधि।
दीन्हो उधार हो, केसव ?
दानि कहा जब मोल लै खैहैं।
दीने विना जु गयी हो गयी।
न गयी न गयी,, घर ही फिरि जैहैं।
गो हितु ? वैरु कियो ?
कब हो हितु ? वैरु किये वरु नीकी ही रैहैं।
वैरु कै गोरस वेचहुगी, अहो ?
वेच्यो न वेच्यो, तो ढारि न देहैं॥

रामचन्द्रिका में कवि ने जहाँ वीरता, प्रताप, आतङ्क का वर्णन किया है वहाँ भाषा में प्रवाह के साथ ओज गुण भी खूब मिलता है।

कोदंड हाथ, रघुनाथ, सँभारि लीजै।
भागे सबै समर जूथप, द्रष्टि दीजै॥

बेटा वसिस्ठ खर को मकराच्छ आयो।
सँघार-काल जनु काल कराल धायो॥
सुग्रीव अंगद बली हनुमन्त रोक्यो।
रोक्यो रहो न रघुवीर जहीं बिलोक्यो॥
मार्‌यो बिभीखन, गदा उर जोर ठेली।
काली समान भुज लच्छमन-कंठ मेली॥

मधुर और वीररस के अनुपयुक्त कही जाने वाली ब्रजभाषा में केशव ओज गुण भरने में खूब सफल हुये हैं।

मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी केशव की भाषा में मिलता है।

कहावतें

[१] खारक दाख खवाइ मरौ किन, ऊंटहिं ऊँटकटारहि भावै।

[२] लालच हाथ रहै, ब्रजनाथ, पै प्यास बुझाइन न ओस के चाटे।

[३] देखिये जू आँख ताहि साख की कहा चली?

[४] कहि केसव, आपनी जाँघ उघारि कै आपही लाजनि को मरई?

[५] राम हू की हरी रावन वाम, चहूँ जुग अंक अहस्ट वली है।

केशव की कुछ सूक्तियाँ कहावतें बनने के योग्य हैं—

[१] पाइय क्यों परमेसुर की गति, पेटहु की गति पाई न जाई।

[२] आप गिरा गुन जो सिखवै, तऊ काक न कोकिल ज्यों कल कूजै।

[३] सोने सिंगारेहु, सोंधे सँवारेहु, पीतर की पितराई न जाई।

[४] बिधि की गति लोपि न जाइ अलोपित, लै मनि सीस भुजंग दयी।

[५] मन हाथ सदा जिनके, तिनके वन ही घर है, घर ही वन है।

मुहावरे

[१] सब ही मिलि द्वैज को चन्द करी।

[२] माइ! मिले मन का करिहौ, मुँह ही के मिले ते कियो मन मैलो।

[३] ब्रज-भूखन नैनहिं भूख है जाकी।

[४] आंखिन सों बांधे आनि काहू की न भागी भूख।
पानी की कहानी, रानी प्यास क्यों बुझाई है?

[५] तुम ब्रजनाथ, हाथ कौन के बिकाने हौ?

[६] हरि त्यौं टुक दीठि पसारत ही।
अँगुरीन पसारन लोक लगै॥

कहा गया है कि केशव ने लक्षणों का विशेष सहारा नहीं लिया है। उनकी भाषा में लाक्षणिक प्रयोगों की कमी है। रामचन्द्रिका को ध्यान में रखते हुये इस कथन में बहुत-कुछ

तथ्य का अंश है पर रसिकप्रिया में लाक्षणिक प्रयोग काफी मिलेंगे।

[१] जलज लोचन जलद ह्वै आये री
[२] मोहन को मन तेरे नैन छ्वै-छ्वै जात हैं
[३] चित चकचौंधे मेरे मदन गोपाल को
[४] होत है आँखिन बीच अखारो
[५] तिहारी विलोकनि में विस बीस बिसे है
[६] चहुं दिसि तें अंगुरी पसरी।
[७] सिगरेई सुगंध विदा करि दीने।
[८] सिगरेई सिंगार अंगार ह्वै लागे!

भावपूर्ण व्यञ्जना के लिये यह पद्य लीजिये—

(१) कौन के सुत? बालि के; वह कौन बाली, न जानियो।
काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानियो॥

है कहाँ वह? वीर अंगद देव-लोक बताइयो।
क्यों गयो? रघुनाथ बान-बिमान बैठ सिधाइयो॥

इससे यह व्यंग्यार्थ निकलता है कि राम का विरोध करने से तेरी भी वैसी दशा होगी।

च्युत संस्कृति (व्याकरण विरोध), अक्रम, न्यूनपद, अधिकपद, पुनरुक्त आदि दोष केशव की भाषा में, विशेषकर रामचन्द्रिका की भाषा में, पाये जाते हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

व्याकरण-विरोध

[१] पीछे मघवा मोहि साप दयी (दयो)

[२] करै साधना एक परलोक ही को (की)

[३] वान हमारेन के तनत्रान विचारि-विचारि विरंचि करे हैं (हमारे वानन के)

[४] अंगद रत्ता रघुपति कीन्हो (कीन्ही)

[५] रह्यो रीझिकै वाटिका की प्रभा को ('देखिकै' यहाँ प्रभा के साथ अन्वित नहीं होता)

अक्रम

[१] राजदेहु जौ वाकी तिया को।

[२] अमानुसी भूमि अवानरी करौं।

न्यूनपद

[१] पानी पावक पवन प्रभु ज्यौं असाधु त्यौं साधु।

अधिकपद

[१] उठि रावन गो मरीच जहाँ मुनि।

पुनरुक्त

'सोभना' और उसके पर्यायवाची शब्दों की केशव ने बहुत अधिक पुनरुक्ति की है। शायद ही कोई ऐसा पृष्ठ निकले जिसमें

वे एक-दो बार न आ गये हों। कहीं कहीं तो अेक ही छन्द में चार-चार बार उनका प्रयोग मिलेगा अर्थात् प्रत्येक चरण में। इसी प्रकार जानिये, मानिये, देखिये, लेखिये, बरनिये बखानिये आदि भी न कितनी बार आये हैं।

विदेशी शब्द केशव की भाषा में बहुत कम मिलते हैं। वे संस्कृत के पण्डित थे अतः यह स्वाभाविक ही है। फिर भी वे दरबारी कवि थे-अैसे दरबार के जो मुगल साम्राज्य के अधीनस्थ था-और दिल्ली दरबार और उसके कर्मचारियों से उनका पर्याप्त सम्पर्क रहा अतः अरबी-फारसी के शब्द कहीं-कहीं आ ही गये हैं। कुछ अैसे शब्द ये हैं—

जहाज, जहान, जामा, सोर, तखत, बकसीस, दमामे, दरबार, दिवान, जमाति।

८—केशव के अलंकार

केशव अलंकार-वादी कवि थे। काव्य में अलंकारों को वे प्रधान स्थान देते थे। उनके अनुसार अलंकार के बिना कविता हो ही नहीं सकती। अलंकार-हीनता को उन्होंने काव्य के दोषों में स्थान दिया है। रसों को भी केशव ने अलंकारों के अन्तर्गत ही गिना है।

केशव में अलंकारों के लिअे अत्यन्त आग्रह दिखाई पड़ता है। अनेक स्थानों पर तो उन्होंने अलंकारों का जमघट लगा दिया है। अेक-अेक पद्य में तीन-तीन चार-चार अलंकारों का मिलना कोई बड़ी बात नहीं। उदाहरणार्थ ये पद्य लीजिये—

(१) विधि के समान है बिमानीकृत राजहंस
विविध विबुध-युत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति, सातों दीप दीपियत
दूसरो दिलीप सो सुदच्छिणा को बल है॥
सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति
छनदान प्रिय कैधों सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ
भगीरथ-पथ-गामी गंगा कैसो जल है॥

इसमें अनुप्रास, लाटानुप्रास, यमक, शब्दश्लेष, अर्थश्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह और उल्लेख अेक ही साथ मिलेंगे।

(२) चहुँ भाग बाग-वन, मानहुँ सघन घन,
सोभा की सी साला हँस-माला सी सरित-बर।
ऊँचे-ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची, जनु,
कौसिक की कीन्ही गंगा खेलत तरल तर।
आपने सुखनि आगे निंदत नरिंद और,
घर-घर देखियत देवता से नारि-नर।
केसौदास, त्रास जहाँ केवल अदृस्ट ही को,
वारियै नगर और ओरछा नगर पर॥

यहाँ अनूप्रास, लाटानुप्रास, वीप्सा, उत्प्रेक्षा, उपमा, परिसंख्या आदि को एकत्र देख सकते हैं।

रामचंद्रिका में तो केशव के पात्र भी अलंकारिक हैं। अयोध्या में राम जब हाथी पर चढ़ कर निकलते हैं तो नगर-नारियाँ

उनका अलंकारमय वर्णन कर चलती हैं। बन जाते हुए राम-लक्ष्मण और सीता को देखकर मार्ग की स्त्रियाँ उनका जो वर्णन करती हैं उसमें अलंकारों का ही कौतुक देखने को मिलता है। अलंकारों का इतना अधिक आग्रह खटकने लगता है।

रसिकप्रिया के पद्यों में कवि का ध्यान अलंकारों की ओर अधिक नहीं है। जो अलङ्कार आये वे संख्या में कम हैं और प्रायः सभी जगह स्वाभाविकता लिये हुअे हैं। कविप्रिया में भी अलंकार खूब हैं पर वहाँ भी वे खटकते नहीं क्योंकि पद्य एक तो मुक्तक पद्य हैं और दूसरे उदाहरण-रूप में ही लिखे गये हैं। रामचंद्रिका में अनेक स्थानों पर अलंकार खटकने लगते हैं। कई पद्यों में तो अैसा जान पड़ता है कि कवि ने उनकी रचना अलंकारिक कविता कर सकने की अपनी योग्यता दिखाने के लिअे ही की है। इस अत्यधिक अलङ्कार-प्रेम के कारण अनेक वर्णन अनावश्यक विस्तृत हो गये हैं जिससे प्रबंध-रस को हानि पहुँची है।

अलङ्कार का कार्य है भाव के उत्कर्ष को व्यंजित करने में सहायक होना अथवा वस्तुओं के रूप, गुण, तथा क्रिया का अधिक स्पष्टतया अनुभव करने में सहायक होना। वस्तुओं के रूप-गुण के स्पष्टीकरण के लिअे प्रायः सादृश्य-मूलक अलङ्कार काम में लाये जाते हैं। सादृश्य-मूलक अलङ्कारों में प्रस्तुत को स्पष्ट करने के लिअे अप्रस्तुत की योजना की जाती है। योजित अप्रस्तुत अैसा होना चाहिअे जो वही भाव उत्पन्न करे जो प्रस्तुत करता है।

केशव के अप्रस्तुतों में प्रायः ये गुण पाये जाते हैं, पर सर्वत्र नहीं। कहीं-कहीं, विशेषतया रामचन्द्रिका में कई जगहों पर अैसे

अलङ्कार भी आये हैं जो न तो भाव की उत्कर्ष-व्यंजना में ही सहायक होते हैं और न वस्तुओं के रूप आदि के स्पष्टीकरण में ही। वे केवल चमत्कार-विधायक होकर रह जाते हैं।

केशव में कल्पना की उड़ान खूब पायी जाती है। अपने अलङ्कार विधान में उनने कहीं-कहीं खूब दूर की उड़ानें भरी हैं।

केशव के मुख्य अलङ्कार उत्प्रेक्षा और श्लेष हैं। उत्प्रेक्षा का प्रयोग उनने बहुत किया है। जहाँ कोई वर्णन आया केशव उत्प्रेक्षा लिये सदा तय्यार हैं। कभी-कभी तो उन पर ऐसी भूख चढ़ जाती है कि एक ही बात के लिए उत्प्रेक्षा पर उत्प्रेक्षा करते चले जाते हैं। ऐसे स्थानों पर वह प्रायः सन्देह के साथ मिल कर आया है।

श्लेष भी केशव को बहुत प्रिय है। प्रायः सभी अलंकारों के साथ उनने श्लेष का मिश्रण किया है। बिना श्लेष के मानों केशव अलंकार-योजना कर ही नहीं सकते। दो-दो अर्थ वाला श्लेष तो जगह-जगह मिलेगा ही, पर केशव ने ऐसे पद्य भी लिखे हैं जिनके तीन-तीन, चार-चार, और पाँच-पाँच तक अर्थ निकलते हैं।

ऐकाध स्थानों को छोड़ कर उनके श्लेष क्लिष्ट कल्पना से विमुक्त और सरल, सुबोध, ऐवं स्वाभाविक हैं।

उत्प्रेक्षा और श्लेष के पश्चात् केशव का प्रिय अलङ्कार संदेह है। परिसंख्या, विरोधाभास और यमक के प्रति भी आकर्षण है। सांग रूपक भी कहीं-कहीं उनने अच्छे कहे हैं। वैसे सभी

अलङ्कार वे काम में लाये हैं। परिसंख्या अलङ्कार वाले पदों के भाव प्रायः बाण की कादम्बरी से अनुवादित हैं।

नाद सौंदर्य और शब्दालङ्कार के लिये ये उदाहरण लीजिये-

[१] तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल वंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर वर॥
एला ललित लवंग संग पुङ्गीफल सोहै।
सारी सुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं॥
सुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूर-गन।
अति प्रफुलित फलित रहै सब केसवदास विचित्र वन

[२] उचकि चलत हरि दचकन दचकत,
मञ्च ऐसे मचकत भूतल के थल-थल।
लचकि लचकि जात सेस के असेस फन,
भागि गयी भोगवती अतल वितल तल॥

[३] घनस्याम घने घन-वेख धरे जु वने वन तें व्रज आवत है।

[४] वात वनाइ वनाइ कहा कहौ लेहु मनाइ मनाइ ज्यों आये।

[५] केसव भूखन में भवि भूखन भू-तन तें तनया उपजायी।

[६] तरनि-तनूजा-तीर तरुवर-तर ठाढ़े,
तारी दै-दै हँसत कुमार कान्ह प्यारी सों।
तेरे ही जीय जियैं जिनको जिय,
रे जिय ता विन तू, व जियोई।
वार-वार वरजत, वावरी है, वारौं आनि,
वीरी ना खवाइ, वीर, विख सी लगत है॥

[७] हरित-हरित हार हेरत हियो हरत,
हारों हों हरिन-नैनी, हरि न कहूँ लहौं।
वन-माली ब्रज पर बरखत वन-माली,
वनमाली दूर, दुख केसव कैसे सहौं ?॥
हृदय-कमल नैन देखिकै कमल-नैन,
होउँगी कमल-ननी, और हौं कहा करौं।
आप-घने घन स्याम घन ही से होत, घन
स्याम के दिवस घनस्याम बिन क्यों रहौं॥

केशव के कुछ दूर की उड़ानों के नमूने लीजिये—

१] बैठे जराइ जरे पलिका पर राम-सिया सब को मन मोहैं।
जोति-समूह रहे मढ़ि कै सुर भूलि रहे बपुरे नर को हैं॥
केसव, तीनिहु लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहैं।
सोभन सूरज मण्डल मांझ मनो कमला-कमलापति सोहैं॥

[२] केसव, अंक ससै हरि-राधिका
आसन अंक लसे रँग भीने।
आनँद सों तिय-आनन की द्युति,
देखत दर्पण में दृग दीने॥
भाल के लाल में बाल बिलोकत
ही भरि लालन लोचन लीने।
सासन पीय सवासन सीय,
हुतासन में जनु आसन कीने॥

[३] भाल गुही गुन लाल लटैं,
लपटी लर मोतिन की सुखदैनी।
ताहि विलोकत आरसी लै करि,
आरस सों इक सारस-नैनी॥
केसव, कान्ह दुरे दरसी,
परसी उपमा मति को अति पैनी।
सूरज—मण्डल में ससि—मण्डल,
मध्य धसी जनु ताहि त्रिवैनी॥

ऊपर जो उदाहरण दिये हैं उनमें अलंकार अस्वाभाविक या प्रयत्नप्रसूत नहीं जान पड़ते। कहीं-कहीं वे स्पष्टता प्रयत्न प्रसुत दिखाई पड़ते हैं। जैसे—

[१] सब जाति फटी दुख की दुपटी
कपटी न रहै जहँ एक घटी,
निघटी रुचि मीच घटी हू घटी,
जग जीव-जतीन की छूटी तटी॥
अघ-ओघ की बेरि कटी बिकटी,
निकटी प्रकटी गुरु-ग्यान गटी।
चहँ ओरनि नाचति मुक्ति-नटी,
गुन धूरजटी वन पंचवटी॥

इस पद्य में अनुप्रास उपहास की सीमा तक पहुंच गया है।

कलभन लीने कोट पर खेलत सिसु चहुं ओर।
अमल कमल ऊपर मनो चंचरीक चित चोर॥

अलङ्कार भाव का सहायक होने के बदले विघातक हो गया है। यहाँ कवि कोट की चहारदीवारी की चौड़ाई की विशालता का भान कराना चाहता है, पर दोहे के उत्तरार्ध में जो उत्प्रेक्षा है वह पूर्वार्ध के प्रभाव को नष्ट कर देती है।

कहीं कहीं अलङ्कार का अनौचित्य अत्यन्त उद्वेग-जनक हो उठता है। लङ्का में अंगद आदि बन्दर मन्दोदरी की दुर्दशा करते हैं और उसके वस्त्राभूषणों को तोड़ और फाड़ डालते हैं। कवि उसका इस प्रकार वर्णन करता है।

छुटी कंठमाला, तुरैं हार टूटे।
खसै फूल फूले लसैं केस छूटे॥
फटी कंचुकी किंकिनी चारु टूटी।
पुरी काम की सी मनो रुद्र लूटी॥

और इस प्रकार वर्णन करता करता झट शृङ्गार में जा पहुंचता है—

विना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राजैं।
किधौं सांच हूं श्रीफलै सोभ साजै॥
किधौं स्वर्न के कुम्भ लावन्य पूरे।
वसीकर्न के चूर्न संपूर्न रूरे॥
किधौं गुच्छ द्वै काम-संजीवनी के।

करुणा के स्थान में इस प्रकार का यह शृङ्गारिक वर्णन यहाँ अत्यन्त अनुचित जान पड़ता है।

बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत।

यहाँ पर राम के लिये उल्लूक की उपमा अत्यन्त अनौचित्य-पूर्ण है और खटकती है।

सुन्दर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की रुचि को है।
तापर भौंर भलो मन-रोचन लोक-विलोचन की रुचि रोहै॥
देखि दयी उपमा जलदेविन दीरघ देवन के मन मोहै।
केसव, केसवराइ मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै॥

इस पद्य में ब्रह्मा-विष्णु की जो 'कसरत' करायी गयी है उसे कवि-कल्पना की उड़ान भले ही कहा जाय।पर पाठक की कल्पना को उसके द्वारा प्रस्तुत दृश्य को सुचारु रूप से हृदयंगम करने में बिलकुल सहायता नहीं मिलती।

नीचे के उद्धरण में अेक दर्जन उपमानी उत्तरीय दुकूल के लिअे पंक्तिबद्ध खड़े दिखाये गये हैं।

पट्टर के खंजरीट नैनन को, केसौदास,
कैधौं मीन-मानस को जलु है कि जार है।
अङ्ग को कि अंगराग, गेडुवा कि गलसुई,
किधौं कोट जीव ही को,उर को कि हारु है॥
बन्धन हमारो काम-केलि को, कि ताड़िबे को,
ताजनो बिचार को कै बिजन बिचारु है॥
मान की जमनिका कै कंज-मुख मूँदिबे को,
सीताजू को उत्तरीय सब सुख सारु है॥

केशव के सब से अधिक खटकने वाले अलङ्कार वे हैं जहाँ उपमेय-उपमान में केवल शाब्दिक समानता होती है।

अंगद को पितु सो सुनिये जू।
सोहत तारहि संग लिये जू॥

यहाँ चन्द्रमा को अङ्गद के पिता (बालि) की उपमा दी है। दोनों में कोई समानता नहीं न तो कोई साधर्म्य ह और न रूप-सादृश्य सादृश्य केवल इतना है कि दोनों के साथ 'तारा' है। तारा के भी श्लेप से जब दो अर्थ लिये जायँगे-तब कहीं ठीक समझ में आवेगा।

दण्डकारण्य की शोभा वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

राजति है यह ज्यों कुल-कन्या।
धाइ विराजति है सँग धन्या॥

दण्डक की शोभा कुल-कन्या के समान है। क्यों? दोनों में समानता? केवल 'धाय' का साथ होना। श्लेपासे धाय शब्द क दो अथ धाइ और धाय नाम का पेड़ है! शाब्दिक समानता के अतिरिक्त कोई समानता नहीं।

बेर भयानक सी अति लगै।
अर्क-समूह जहाँ जगमगै॥

इन पंक्तियों में तो अनौचित्य की अति हो जाती है। कहाँ दण्डक वन की सुन्दर शोभा और कहाँ भयानक प्रलय काल।

६—केशव के छन्द

केशव ने अपने ग्रन्थों में मुख्यतया नीचे लिखे छन्दों का प्रयोग किया है—

(१) रसिक प्रिया और कविप्रिया में दोहा, सवैया और घनाक्षरी (कवित्त) का लक्षण प्रायः दोहों में दिये गये हैं और उदाहरण सवैयों और घनाक्षरियों में।

(२) रतनबावनी में वीररस के उपयुक्त छप्पय का प्रयोग किया गया है।

(३) वीरसिंहदेव-चरित्र आख्यान-काव्य है। आख्यान-काव्य के लिये अपभ्रंश-काल से ही चौपाई का प्रयोग होता रहा है। केशव ने भी चौपाई का ही प्रयोग किया है और बीच-बीच में दोहे भी दिये हैं।

(४) रामचन्द्रिका और विज्ञानगीता में कवि ने विविध प्रकार के छन्दों से काम लिया है। रामचन्द्रिका को छन्दों का अजायबघर कहा गया है। पिङ्गल ग्रन्थों में दिया हुआ प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध शायद ही कोई छन्द उसमें छूटा हो। अेक-अेक, दो-दो अक्षरों तक के छन्द उसमें मौजूद हैं। जान पड़ता है कि कवि ने छन्दों के समस्त भेद-प्रभेदों के उदाहरण उपस्थित करने के लिये ही इस ग्रन्थ की रचना की है। जब रीति के सभी अङ्गों के उदाहरण दिये गये हैं तो छन्द ही क्यों छूट जायँ।

अधिकांश छन्दों के नाम और भेद केशव की कृपा से ही बचे रह गये हैं अन्यथा लोग उनको भूल चले थे। पिंगल के

ग्रन्थों में भी उनके उल्लेख नहीं मिलते। रामचन्द्रिका में अक ही दण्डक के अनेकों भेद देख लीजिये। चौपाई के भी दर्जन से ऊपर रूप वहाँ देखने को मिलेंगे।

इतने छन्दों का प्रयोग करने पर भी केशव के खास छन्द सवैया और कवित्त हैं। इनमें ये बहुत सफल हुये हैं। केशव के बाद आने वाले सभी रीति-कवियों ने इन्हीं को प्रधानतया अपनाया। वीररस के वर्णन में केशव ने छप्पय, भुजङ्गप्रयात और बसन्ततिलका का प्रयोग किया है और अच्छी सफलता प्राप्त की है! रामचन्द्रिका में चौपाइयाँ भी अच्छी बन पड़ी है।

सब प्रकार के छन्दों में अेक समान सफल कविता कर लेना बड़े से बड़े कवि के लिये भी शायद ही सम्भव हो। केशव से अैसी आशा करना उनके प्रति अन्याय करना होगा। हाँ, केशव के जो खास छन्द हैं उनमें वे अच्छी तरह सफल हुये हैं और रीतिकाल के शायद ही किसी कवि से पीछे रहे हों।

छोटे छन्द गम्भीर प्रबन्धकाव्य के उपयुक्त नहीं होते सिवाय उन स्थानों के जहाँ गति में वेग या क्षिप्रता हो। अन्यथा उनसे काव्य की गम्भीरता को हानि पहुँचती है। इसी प्रकार प्रबन्ध-काव्य सब प्रकार के छन्दों का उपयुक्त क्षेत्र नहीं। छन्दों के उदाहरण उपस्थित करने हों तो मुक्तक-काव्य का ही सहारा लेना चाहिये। जल्दी-जल्दी छन्द को बदलना काव्य की गति में बार-बार बाधा उपस्थित करता है। जान पड़ता है जैसे बार-बार झटके लगते हैं। छन्द-परिवर्तन हो पर वहीं जहाँ अेक मञ्जिल खतम हो जाय। इसीलिये संस्कृत के साहित्याचार्यों ने

सर्ग की समाप्ति या सर्ग-परिवर्तन पर ही छन्द-परिवर्तन का विधान किया है।

१०--क्या केशव की कविता कठिन है?

केशव को कठिन काव्य का प्रेत कहा गया है। साथ ही ये कहावतें भी प्रसिद्ध हैं—

(१) कवि को दीन्ह न चहै बिदाई,
पूछै केसव को कविताई।
(२) दीन्हीं न चाहे बिदाई नरेस तो
पूछत केशव की कविताई॥

इस में संदेह नहीं कि केसव की कविता अन्यान्य रीति-कवियों की अपेक्षा साधारणतया कुछ कठिन है। इस में कई कारण हैं। फिर भी वह ऐसी क्लिष्ट नहीं कि सावधानी से विचारने पर समझ में न आवे। हमारी सम्मति में देव की कविता अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। (अधिक मधुर भी है।)

कुछ तो अव्यवस्थित भाषा के कारण और कुछ क्लिष्ट कल्पना तथा श्लेष आदि अलंकारों के कारण केशव की कविता क्लिष्ट प्रतीत होती है। अव्यवस्थित भाषा के कारण वाक्य का अन्वय एक दम ध्यान में नहीं आता। जैसे—

राज देहु जो वाकी तिया को।

इसका अर्थ है जो राज्य और उसकी स्त्री को दिला दो। इसी प्रकार केसव ने कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिनका

ब्रजभाषा में सार्वजनिक प्रचार नहीं था। बुन्देलखंड के प्रांतीय शब्द भी कहीं-कहीं मिल जाते हैं। एकाध जगहों में न्यून पद दोष के कारण भी अर्थ शीघ्र ध्यान में नही आता। जैसे।

पानी पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु।

इसका अर्थ है—पानी, पावक, पवन और प्रभु साधु और असाधु के साथ समान व्यवहार करते हैं।

केशव-काव्य की क्लिष्टता में टीकाकारों ने भी बहुत सहायता की है। रामचन्द्रिका की जानकीसहाय कृत टीका तो फिर भी अच्छी है यद्यपि वे भी कई स्थानों पर केशव का भाव ठीक से नहीं समझ पाये हैं। रसिक प्रिया पर सरदार कवि की जो टीका है[1] वह तो नितांत भ्रष्ट है। पग पग पर अशुद्ध अर्थ किया गया है। जहाँ ठीक समझ में नहीं आया वहाँ मनमाना अर्थ कर डाला। अर्थ करते समय भाव को स्पष्ट करने के बजाय व्यर्थ की शंकाएं उपस्थित हैं और उनके वैसे ही हास्यास्पद समाधान दिये हैं। यही हाल कविप्रिया की कतिपय टीकाओं का भी है।

क्लिष्टता का अेक और कारण है शुद्ध पाठ का अभाव। केशव के ग्रंथों के विभिन्न प्रतियों में, पठान्तरों की कमी नहीं, जिनमें से अनेक अशुद्ध हैं। केशव-काव्य के शुद्ध पाठ वाले संस्करण की नितान्त आवश्यकता है।

---

१ यह भी सरदार कवि की अपनी कृति नहीं है। एक प्राचीन टीका की हूबहू नकल है। जिसमें कहीं २ कुछ अंश संक्षिप्त कर दिया गया है। आश्चर्य है कि लेखक ने कहीं टीका के मूल-लेखक का उल्लेख तक नही किया।

११—आचार्य केशव

केशव हिन्दी में रीति-काव्य के आरम्भ-कर्ता माने जाते हैं। रीति-निरूपण सम्बन्धी ग्रन्थ सर्व प्रथम केशव ने ही लिखे। यों तो उनके पूर्व भी कृपाराम, गोप, करनेस आदि रसों एवं अलङ्कारों पर छोटे-मोटे ग्रंथ लिख चुके थे, पर हिन्दी साहित्य पर उनका प्रभाव नहीं पड़ा। वे चीण प्रयास मात्र थे। परिवर्तन की दिशा में संकेतक होने पर भी वे साहित्य के प्रभाव को रीति-काव्य की ओर नहीं मोड़ सके। 'इस दिशा में सब से पहला विस्तृत और गम्भीर प्रयत्न केशव ही का था और यद्यपि उनके मत को हिंदी में साहित्य-शास्त्र पर लिखनेवालों ने आधाररूप से नहीं ग्रहण किया फिर भी उन ने लोगों की प्रवृत्ति को एक विशेष दिशा की ओर पूर्णतया मोड़ दिया।' केशव संस्कृत के अच्छे पंडित और प्रसिद्धि-प्राप्त कवि थे और साथ ही एक राजा के आदरणीय गुरु थे। इस कारण वे ऐसी स्थिति में थे जो उनको प्रभावशाली बना सकती थी। साहित्य के प्रभाव को मोड़ देने में उन्हे पूर्ण सफलता मिली। उनके अनुकरण पर रीति ग्रन्थों की भरमार हो चली। कवियों ने कविता लिखने की यह प्रणाली ही बनाली कि पहले संक्षेप में काव्यांग का लक्षण देकर उसके उदाहरण रूप में कविता लिखना। इस प्रथा ने धीरे-धीरे इतना ज़ोर पकड़ा कि बिना रीति-ग्रन्थ लिखे कवि-कर्म पूरा समझा ही नहीं जाने लगा।

केशव ने काव्यांगों के निरूपण में काव्यादर्श-कार दंडी, कविकल्प-लतावृत्ति-कार अमरचंद और अलंकारशेखर-कार

केशवमिश्र का अनुसरण किया। चंद्रालोक-कार जयदेव और कुवलायनंद-कार अप्पय्यदीक्षित का मार्ग अपेक्षाकृत सरल था। चिंतामणि और जसवंतसिंह ने अपनी रीतिग्रन्थ इन्हीं का अनुसरण करके लिखे। पिछले रीति-कवियों ने इन्हीं का पथ ग्रहण किया। बात यह थी कि रीतिकाल के कवियों में एकाध अपवाद छोड़कर बाकी को काव्य-रीति-निरूपण से कोई रुचि न थी। वे रीति-निरूपक नहीं, कवि थे। उनका उद्देश्य रीति-निरूपण नहीं कविता करना था। रीति-निरूपण तो परंपरापालन के लिए बाध्य होकर करना पड़ता था। यही कारण था कि उन ने अपेक्षाकृत सरल मार्ग को ही ग्रहण किया। एक दोहे में संक्षेप से लक्षण कहा और छुट्टी हुई।

संस्कृत में कवि और आचार्य सदा पृथक व्यक्ति रहे पर हिंदी में केशव की कृपा से दोनों का एकीकरण हो गया। कवि केशव को रीति-ग्रन्थों के अभाव के कारण आचार्य केशव भी बनना पड़ा। फलस्वरूप हिंदी में साहित्य विवेचना का ठीक विकास नहीं हो पाया। काव्यांगों का विस्तृत विवेचन, तर्कद्वारा उनका खण्डन-मण्डन, नये नये सिद्धांतों का प्रतिपादन, नयी-नयी उद्भावनाएं यह कुछ भी नहीं हो पाया।

जैसा कि ऊपर कह आये हैं केशव ने मुख्यतया दंडी, अमर-चन्द्र और केशवमिश्र को आधार मान कर काव्यांगों का निरूपण किया है जो रस-नीति आदि सब कुछ अलङ्कार के अंतर ही ले लेते थे। साहित्य शास्त्र को अधिक व्यवस्थित और समुन्नत रूप देने वाले आनन्दवर्धन, मम्मट आदि का मार्ग उन ने नहीं ग्रहण किया। रीति काल के अन्यान्य कवियों की भाँति

केशव का विवेचन भी वैज्ञानिक नहीं है। उक्त ग्रन्थों के आधार पर उनने साधारण सा चलताऊ विवेचन कर दिया है। बहुत से स्थलों पर न तो लक्षण ही स्पष्ट हैं और न उदाहरण ही ठीक बैठते हैं। एक बात केशव ने नयी की। विविध भावों का वर्णन करते हुए उनने उनके *प्रकाश* और *प्रच्छन्न* दो दो भेद किये। पर ये भेद महत्वपूर्ण होते हुए भी उन्हीं तक रह गये। पिछले कवियोंने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उनका ध्यान तो अधिक से अधिक सरलीकरण की ओर था। इन सूक्ष्म भेदोपभेदों की ओर वे क्यों ध्यान देने लगे?

केशव के रीति सम्बन्धी दो ग्रन्थ हैं—रसिक प्रिया और कविप्रिया (इनका वर्णन पहले दिया जा चुका है)।

भामह, दंडी आदि की भांति केशवदास काव्य में अलङ्कारों को प्रधानता देनेवाले चमत्कार वादी कवि हैं। कविप्रिया में लिखते हैं—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूखन बिनु न बिराजई कविता वनिता मित्त॥

अर्थात् उनके अनुसार काव्य के लिए अलङ्कार आवश्यक है। अलङ्कारहीनता को उनने दोषों के अंतर्गत गिना है।[1]

रसों को उन ने बिलकुल भुलाया नहीं है पर रसवत् अलङ्कार के अन्तर्गत कर दिया है।

१. छन्द-विरोधी पंगु गनि, नगन जु भूखन-हीन।

अलङ्कारों के उनने दो भेद किये हैं—(१) सामान्य और (२) विशिष्ट। सामान्यालङ्कार वास्तव में अलङ्कार नहीं हैं कुछ वस्तुओं का वर्णन किस किस रूप रंग में या किस प्रकार करना चाहिए यही सामान्यालङ्कार के प्रकरणों में बताया गया है जैसे इन का वर्णन किया जाय तो उसकी किन किन वस्तुओं का वर्णन किया जाय अथवा कीर्ति का वर्णन किया जाय तो उसे किस रंग का बताना चाहिए। इत्यादि २

विशिष्टालङ्कार प्रकरणों में वास्तविक अलङ्कारों का विवेचन है नीचे लिखे अलङ्कारों को केशव ने लिया है—

स्वभावोक्ति, विभावना, हेतु, विरोध, विशेष, उत्प्रेक्षा। आक्षेप क्रम, गणना, आशिष, प्रेम, श्लेष, सूक्ष्म, लेश, निदर्शना, रसवद्, ऊर्जस्वि, अर्थान्तरभास, व्यतिरेक, अपह्नति। समाहित, सुसिद्धि, प्रसिद्धि, विपरित, रूपक, दीपक, प्रहेलिका, परिवृत्ति, उपमा, यमक, चित्र।

अलङ्कारों के अतिरिक्त केशव ने दोषों का वर्णन किया है। दोनों के दो प्रकार करके पहले अंध, वधिर, पंगु, नग्न और मृतक के पाँच दोष बताये हैं जिनके लक्षण इस प्रकार हैं—

अंध विरोधी पंथ को
बधिर जु सन्द-विरुद्ध
छंद-बिरोधी पंगु गनि
नगन जु भूखन हीन
मृतक कहावे अर्थ बिनु।

इनके अतिरिक्त १३ दोष और बताये हैं—

अगण, यतिभंग, व्यर्थ, अपार्थ, हीन-रस, कर्णकटु, पुनरुक्ति हीनक्रम, देश-विरोध, लोक-विरोध, न्याय-विरोध, आगम-विरोध

रसिकप्रिया में शृंगार रस के उपादानों का निरूपण किया है जिनकी नामावली पहले दी जा चुकी है।

१२—केशव का हिंदी साहित्य में स्थान

जन-मत के अनुसार केशव का स्थान सूर और तुलसी के बाद ही है। 'सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केसवदास' यह लोकोक्ति न-जाने कब से चली आयी है। अेक और लोकोक्ति के अनुसार सूर, तुलसी और केशव ही हिंदी के तीन सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। आधुनिक आलोचकों के रुख में धीरे-धीरे परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। मिश्र बन्धुओं ने केशव का स्थान सूर, तुलसी, देव, बिहारी, भूषण और मतिराम के बाद यानी सातवाँ रखा है। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें हृदय हीन कह कर कवि ही नहीं माना। कृष्णशङ्कर शुक्ल और पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने उनमें गुणों की अपेक्षा दोष ही अधिक पाये हैं। अन्यान्य विद्वान भी प्रायः इन्हीं के अनुयायी हो चले हैं। इस युग में लाला भगवानदीन ही अैसे व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं जिन ने डंके की चोट केशव को तुलसी और सूर से भी श्रेष्ठ बताने का साहस किया। लाला जी केशव के अन्धभक्त थे। उन्हों ने केशव के दोषों को भी गुणों के रूप में देखा है। उन ने केशव में बताये जाने वाले दोषों के निराकरण का ही प्रयास किया, पर केशव की खूबियाँ जनता के सामने नहीं रक्खीं।

केशव में दोष हो सकते हैं पर वे इतने हीन नहीं हैं जितना कि आलोचकों ने उन्हें बताया है। दोष किस कवि में नहीं हैं ? रीतिकाल के प्रायः सभी कवियों में थोड़ी या बहुत वे सभी त्रुटियां पायी जाती हैं जो केशव में बतायी गयी हैं।

केशव परिस्थितियों के निर्माता नहीं उन से निर्मित थे। तुलसी की भाँति वे परिस्थिति के ऊपर न उठ सके। उनकी त्रुटियां बहुत-कुछ परिस्थितियों द्वारा प्रसूत हैं।

केशव संस्कृत के विद्वान थे। उस समय के बहुत पहले संस्कृत साहित्य अपने प्राचीन आदर्श से गिर चुका था। मुक्तककाव्य की प्रधानता हो चली थी। अलङ्कार-वाद का पुनः उत्थान हुआ। चन्द्रालोककार जयदेव ने तो यहां तक कह डाला—

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥

कविता में चमत्कार को ही मुख्य समझा जाने लगा। कल्पना की उड़ान और दूर की सूझ ही कवि के मुख्य गुण समझे जाने लगे थे।

साथ ही कवि-शिक्षा के ग्रन्थ भी बन गये थे। लोग उन्हीं को पढ़ कर और उनका अनुसरण कर-कर ही कवि बनने लगे। कविता बहुत कुछ मस्तिष्क के निकट जा पहुंची।

कविता में घोर शृङ्गारिकता अपना अड्डा जमाने लगी जो अश्लीलता की हद तक जा पहुंचती थी हनुमन्नाटक में सीता-राम

का शृङ्गार-वर्णन आज कल की भाषा में घोर अश्लील कहा जा सकता है। प्रेम का आदर्श बहुत कुछ गिर गया। कविता विलासी आश्रयदाताओं के विलास की वस्तु रह गयी।

ऐसी परिस्थिति में केशव का आविर्भाव हुआ। फिर वे थे दरबारी कवि। ऐसे दरबार के जहाँ वेश्याओं का जमघट भी था। आश्रयदाता की फरमाइश से केशव ने अपनी रचनाएँ लिखीं।

ऐसे वातावरण में लिखित रचनाओं में यदि दोष मिलें तो कुछ भी अस्वाभाविक नहीं। उनमें प्रेम के ऊँचे आदर्शों की आशा करना उचित नहीं कहा जा सकता। केशव की रामचन्द्रिका हनुमन्नाटक के आदर्श पर लिखी गयी है जो, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भयङ्कर शृङ्गार से लदी है। केशव ने उसे बचा दिया क्या यही कम किया।

प्राकृतिक और अपभ्रंश कविता के प्रभाव से राधा-कृष्ण उत्तर कालीन कविता के नायक-नायिका बन बैठे। राम का चरित्र गम्भीरता लिये हुए था। उन्हें साधारण नायक-नायिका बनाने का साहस जल्दी से नहीं हुआ। पर संस्कृत के कवियों ने इधर हाथ मारना शुरु कर दिया था और गीत गोविन्द के ढंग पर गीताराघव आदि की रचना भी हो गयी। हनुमन्नाटक ने तो सब बाँध ही तोड़ डाला। केशव की—

श्रम तेऊ हरैं तिन को कहि केसव, चंचल चारु दृगंचल सों।

इस पंक्ति में जिस सीता को हम पाते हैं वह कहाँ से आयी है यह बताना कठिन नहीं। तुलसी ने भी हनुमन्नाटक का बहुत

आधार लिया है पर वे परिस्थितियों के प्रभाव से परे थे। यदि तुलसी का 'मानस' राम के गम्भीर चरित्र की पुनः दृढ़ता से स्थापना न करता तो क्या आश्चर्य था कि सीता-राम की भी राधा-कृष्ण की ही तरह दुर्गति होती।

केशव ने केवल कविता ही नहीं की। रीति का विवेचन भी उन्हें करना था। काव्य-रचना उनने उदाहरण रूप में की। वे बहुत कुछ बँधे हुये थे। फिर भी उनकी रचनाओं के अनेक अंश बहुत ही सुन्दर हुये हैं।

रामचन्द्रिका के जो अंश उनने हनुमन्नाटक आदि के प्रभाव से रहित होकर लिखे वे प्रवन्ध काव्य की दृष्टि से बहुत अच्छे बने हैं। यदि समस्त रामचन्द्रिका उनने उसी प्रकार लिखी होती तो वह अेक सफल प्रवन्ध-काव्य हुआ होता।

केशव को हृदयहीन बताना केशव के साथ अन्याय करना है। उन की रसिक-प्रिया के छन्द बहुत कुछ स्वतन्त्र रचना है। राम-चन्द्रिका के अधिकांश पद्यों की भाँति वे संस्कृत के अनुवाद या आधार पर लिखे हुए नहीं हैं। उनमें कवि का हृदय देखने को मिल सकेगा। रसिक-प्रिया की भाषा भी सदोष नहीं। उस में पर्याप्त, प्रवाह और माधुर्य भी मिलेगा।

सारांश केशव को हम सूर और तुलसी या जायसी और कबीर के साथ तो नहीं बैठा सकते पर रीति कालीन कवियों में वे बिहारी या देव जैसे एकाध कवियों को छोड़ कर किसी से पीछे नहीं दिखाई पड़ेंगे।

कवि के साथ-साथ आचार्य के रूप में भी केशव का हिन्दी में महत्त्व-पूर्ण स्थान है। वे हिन्दी में रीति-ग्रन्थों के प्रथम महत्त्व-

पूर्ण लेखक रीति-काव्य-परम्परा के जन्मदाता और हिन्दी के प्रथम आचार्य हैं। रीति-विवेचन की दृष्टि से पीछे आने वाले लेखकों में भिखारीदास आदि अनेक लेखक ही इनकी बराबरी का दावा कर सकते हैं। (इस सम्बन्ध में प्रस्तावना के 'आचार्य केशव' प्रकरण को देखिये)।

केशव हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों में से हैं।

सहायक-पुस्तकें

(१) कृष्णशंकर शुक्ल—केशव की काव्य कला
(२) चन्द्रबली पांडे—महाकवि केशवदास
(३) रामसिंह—संक्षिप्त केशव
(४) सुधीन्द्र—केशव, एक समीक्षा
(५) अरूप—केशव, एक अध्ययन
(६) रामरतन भटनागर—केशव, एक अध्ययन
(७) शम्भूदयाल सक्सेना—कविवर केशवदास नामक निबंध
(८) रामकृष्ण शुक्ल—साहित्य-समीक्षा
(९) पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल-संक्षिप्त रामचन्द्रिका की प्रस्तावना
(१०) मिश्रबन्धु—हिन्दी नवरत्न
(११) रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास
(१२) श्यामसुन्दर दास—हिन्दी साहित्य
(१३) लाला भगवानदीन—केशव-पञ्चरत्न
(१४) दामोदर—हनुमन्नाटक
(१५) जयदेव—प्रसन्नराघव नाटक

केशव-सुधा

मंगलाचरण

गणेश-वन्दना

बालक मृनालनि ज्यों तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को।
बिपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को।
दूरि कै अलंक-अंक भव सीस-ससि सम
राखत है, केसौदास, दास के बपुख को।
साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तोरै,
दसमुख-मुख जोवैं गजमुख-मुख को ॥१॥

सरस्वती-बन्दना

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाइ,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई।
देवता प्रसिद्ध सिद्ध रिषि-राज तपबृद्ध,
कहि-कहि हारे सब, कहि न केहूँ लई।

भावी भूत वर्तमान जगत बखानत है,
केसौदास, केहू ना बखानी काहू पै गई।
बनैं पति चार मुख, पूत बनैं पांच मुख,
नाती बनैं खट मुख, तदपि नई-नई ॥ २ ॥

श्रीराम-वन्दना

पूरन पुरान अरु पुरुष पुरान,
परिपूरन बतावैं, न बतावैं और उक्ति को।
दरसन देत जिन्हें दरसन समुझैं न,
नेति-नेति कहैं बेद छांडि आन जुक्ति को।
जानि यह केसौदास अनुदिन राम-राम,
रटत रहत, न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देइ अनिमाहि, गुन देइ गरिमाहि,
भक्ति देइ महिमाहि, नाम देइ मुक्ति को ॥ ३ ॥

केशव के संवाद

(१) रावण-बाण-संवाद

सबही को समझो सबनि बल-विक्रम-परिमान।
सभा मध्य ताही समय आये रावन-बान ॥ १ ॥

नरनारि सबै। भयभीत तबै ॥
अचरज्जु यहै। सब देखि कहैं ॥२॥

है राकस दससीस को, दैयत बाहु हजार।
कियो सबनि के चित्त रस अद्भुत भय संचार ॥३॥

रावण

संभु-कों दण्ड दै। राजपुत्री कितै?
टूक द्वै-तीनि कै। जाहुं लंकाहि लै ॥४॥

बन्दीजन

दससिर, आओ। धनुस उठाओ ॥
कछु बल कीजै। जग जस लीजै ॥५॥

बाण

दसकंठ रे सठ, छांडि दै हठ, बार-बार न बोलियै।
अब आजु राज-समाज में बल साजु, चित्त न डोलियै ॥

गिरिराज तें गुरु जानियै, सुरराज को धनु हाथ लै।
सुख पाइ ताहि चढ़ाइकै घर जाहि रे जस साथ लै ॥६॥

बानी कही बान। कीन्ही न सो कान॥
अद्यापि आनी न। रे वन्दि कानीन ॥७॥

वाण

तु पै जिय जोर। तजौ सब सोर॥
सरासन तोरि। लहौ सुख कोरि॥ ८ ॥

रावण

वज्र को अखर्ब गर्ब गंज्यो जेहि, पर्वतारि,
जीत्यो है, सुपर्व सर्ब भाजे लै-लै अंगना
खंडित अखंड आसु कीन्हो है जलेस-पासु,
चन्दन सी चन्द्रिका सों कीन्ही चन्द-बन्दना।
दण्डक में कीन्हों काल दण्डहू को मान खण्ड,
मानो कीन्ही काल ही की काल खंड-खंडना।
केसव, को दण्ड विसदण्ड ऐसो खंडै अब,
मेरे भुजदण्डन की बड़ी है विडम्बना ॥९॥

वाण

बहुत बदन जा के। बिबिध बचन ता के॥

रावण

बहु भुज-जुत जोई। सबल कहिय सोई ॥१०॥

अति असार भुज भार ही बली होहुगे, बान।

बाण

मम बाहुन को जगत में सुनु, दसकंठ, विधान ॥११॥

हौं जब हौं जब पूजन जात पिता-पद पावन पाप-प्रनासी।
देखि फिरौं तब हीं तब, रावन, सातौं रसातल के जे बिलासी॥
लै अपने भुजदण्ड अखंड करौं छितिमंडल छत्र प्रभा सी।
जानै को, केसव, केतिक बार मैं सेस के सीसन दीन्ह उसांसी॥१२॥

रावण

तुम प्रबल जो हुते। भुजबलिन संजुते।
पितहि भुव ल्यावते। जगत जस पावते॥१३॥

बाण

पितु आनिये केहि ओक। दिये दच्छिना सब लोक।
यह जानु रावन दीन। पितु ब्रह्म के रस लीन॥१४॥

कैटभ सो नरकासुर सो पल में मधु सो मुर सो जेइ मार्यो।
लोक-चतुर्दस-रच्छक केसव पूरन वेद-पुरान विचार्यो।
श्री कमला-कुच-कुंकुम-मण्डन-पण्डित देव अदेव निहार्यो।
सो कर मांगन को बलि पै करतारहु को करतार पसार्यो॥ १५॥

रावण

हमहिं तुमहिं नहिं बूझिये बिक्रम-बाद अदण्ड।
अब ही यह कहि देइगो मदन-कदन-को खण्ड॥१६॥

सुत बान-रावन को सुन्यो। सिर राज-मण्डल में धुन्यो।

विमति

जगदीश अब रच्छा करो। बिपरीत बात सबै हरो॥१७॥

रावन-बान महाबली, जानत सब संसार।
जो दोऊ धनु करसिहैं, ता को कहा बिचार ॥१८॥

बाण

केसव, और तें और भई, गति जानि न जाय कछू करतारी।
सूरन के मिलिबे कहँ आयो, मिल्यो दसकंठ सदा अबिचारी।
बाढ़ि गयो बकवाद वृथा, यह भूलि न, भाट, सुनावहि गारी।
चाप चढ़ाइहौं कीरति को, यह राज करै तेरी राजकुमारी ॥१६॥

रावण

मो कहँ रोकि सकै कहु को रे। जुद्ध जुरे जम हू कर जोरै।
राजसभा तिनुका करि लेखौं। देखि कै राज-सुता धनु देखौं ॥२०॥

बाण

बान कह्यौ तब रावन सों, अब वेगि चढ़ाउ सरासन को।
बातैं बनाइ-बनाइ कहा कहै, छोड़ि दे आसन-बासन को।
जानत है किधौं जानत नाहिंन, तू अपने मद-नासन को।
ऐसेहि कैसे मनोरथ पूजत, पूजे बिना नृप-सासन को ॥२१॥

रावण

बान, न बात तुम्हैं कहि आवै।

बाण

सोई कहौ जिय तोहि जो भावै ?

रावण

का करिहौ, हम योंहीं बरैंगे ?

बाण

हैहयराज करी सो करैंगे ॥२२॥

रावण

भौंर ज्यौं भँवत भूत-बासुकी-गनेस-जुत,
मानो मकरन्द-वुन्द-माल गङ्गा-जल की।
उड़त पराग पट, नाल सी बिसाल बाहु,
कहा कहौं केसौदास सोभा पल पल की।
आयुध सघन सर्व-मंगला समेत सर्व-
पर्वत उठाय गति कीन्ही है कमल की।
जानत सकल लोक लोकपाल दिगपाल,
जानत न बान, बात मेरे बाहुबल की ॥२३॥

तजि कै सु-रारि। रिस चित्त मारि॥
दसकंठ आनि। धनु छुयो पानि ॥ २४ ॥

विमति

तुम बल-निधान। धनु अति पुरान॥
पीसजहु अंग। नहिं होइ भङ्ग॥

खण्डित मान भयो सब को, नृप-मण्डल हारि रह्यो जगती कों।
व्याकुल बाहु, निराकुल बुद्धि, थक्यो बल-बिक्रम लंकपती कों।
कोटि उपाय किये, कहि केसव, केहूँ न छांड़त भूमि रती कों।
भूरि बिभूति-प्रभाव सुभावहि ज्यों न चलै चित जोग जती को ॥२६॥

धनु अति पुरान लंकेस जानि। यह बात बान सों कही आनि।
हौं पलक मांहि लेहौं चढ़ाइ। कछु तुमहूँ तो देखौ उठाइ ॥२७॥

वाण

मेरे गुरु को धनुष यह, सीता मेरी माइ
दुहू भांति असमंजसै, बान चले सुख पाइ ॥२८॥

रावण

अब सीय लिये बिन हौं न टरौं। कहुँ जाहुँ न तौ लगि, नेम धरौं।
जब लौं न सुनौं अपने जन को। अति आरत सब्द हते तन को ॥२९॥
काहु कहूँ सर आसुर मारयो। आरत सब्द अकास पुकारयो।
रावन के वह कान परयो जब। छोड़ि स्वयंवर जात भयो तब ॥३०॥

जब जान्यो सब को भयो, सब ही बिधि व्रत भङ्ग।
धनुष धरयो ते भवन में, राजा जनक अनंग ॥३१॥

प्रबन्ध कवि केशवदास

रामचन्द्रिका

(१) लङ्का में हनुमान

हरि कैसो बाहन की बिधि कैसो हेम-हंस,
लीक सी लिखित नभ पाहन के अंक को।
तेज को निधान राम-मुद्रिका-बिमान, कैधों
लच्छमन को बान छूट्यो रावन निसंक को।
गिरि-गज-गंड तें उड़ान्यो सुबरन – अलि
सीता - पद-पंकज सदा कलंक-रंक को।
हवाई सी छूटी, केसौदास, आसमान में,
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को ॥ १ ॥

उदधि नाकपतिसत्रु को उदित जानि बलवन्त।
अन्तरिच्छ हीं लच्छि पद अच्छै छुयो हनुमन्त ॥ २ ॥

बीच गये सुरसा मिली, और सिंहिका नारि।
लीलि लियो हनुमंत तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि ॥ ३ ॥

कछु राति गये करि दंस-दसा सी।
पुर माँझ चले बनराजि-बिलासी ॥
जब हीं हनुमन्त चले तजि संका।
मग रोकि रही तिय ह्वै तब लंका ॥ ४ ॥

लंका

कहि, मोहि उलंघि चले तुम को हौ?
अति सूच्छम रूप धरे मन मोहौ ॥

चलन लगौ जबही तब कीजौ।
मृतक सरीरहि पावक दीजौ॥
यह कहि जात भई वह नारी।
सब नगरी हनुमन्त निहारी॥ १० ॥

तब हरि रावन सोवत देख्यो।
मनिमय पलका की छवि लेख्यो॥
तहँ तरुनी बहु भांतिन गावैं।
बिच-बिच आवझ बीन बजावैं॥ ११ ॥

मृतक चिता पर मानहु सोहै।
चहुँ दिसि प्रेतवधू मन मोहैं॥
जहँ-तहँ जाइ तहां दुख
सिय बिन है सिगरो घर सूनो॥ १२ ॥

कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं।
सुरी-आसुरी बाँसुरी गीत गावैं॥
कहूँ जच्छिनी पच्छिनी को पढ़ावैं।
नगी-कन्यका पन्नगी को नचावैं॥ १३ ॥

पियै एक हाला, गुहै एक माला।
बनी एक बाला नचै चित्रसाला॥
कहूँ कोकिला कोक की कारिका को।
पढ़ावै सुवा लै सुकी-सारिका को॥ १४ ॥

फिर्यो देखिकै राजसाला सभा को।
रह्यो रीझिकै बाटिका की प्रभा को॥

फिर्यो और चौंहूँ चितै सुद्ध गीता।
बिलोकी भली सिंसिपा-मूल सीता॥ १५॥

धरे एक बेनी मिली मैल सारी।
मृनाली मनो पंक सों काढ़ि डारी॥
सदा राम-नामै ररै दीन बानी।
चहूँ ओर हैं राकसी दुःखदानी॥ १६॥

ग्रसी बुद्धि सी चित्त-चितानि मानो।
किधौं जीभ दन्तावली में बखानो॥
किधौं घेरिकै राहु-नारीन लीनी।
कला चन्द्र की चारु पीयूख-मीनी॥ १७॥

किधौं जीव की जोति माया न लीनी।
अविद्यान के मध्य बिद्या प्रबीनी॥
मनो संबर-स्त्रीन में काम-बामा।
हनूमान ऐसी लखी राम-रामा॥ १८॥

तहां देव-द्वेषी दसग्रीव आयो।
सुन्यो देवि सीता महा दुःख पायो॥
सबै अंग लै अंग ही में दुरायो।
अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो॥ १९॥

रावण

सुनो देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै।
इतो सोच तो राम-काजै न कीजै॥

बसै दंडकारण्य, देखै न कोऊ।
जो देखै महाबावरो होइ सोऊ ॥ २० ॥

कृतघ्नी कुदाता कु-कन्याहि चाहै।
हितू नग्न-मुंडीन ही को सदा है ॥
अनाथै सुन्यो मैं अनाथानुसारी।
बसै चित्त दंडी जटी-मुंडधारी ॥ २१ ॥

तुम्हैं देवि दूखै, हितू ताहि मानै।
उदासीन तासों सदा ताहि जानै ॥
महानिर्गुनी नाम ताको न लीजै।
सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै ॥ २२ ॥

अदेवी - नृदेवीन की होहु रानी।
करै सेव बानी मघौनी मृडानी ॥
लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावैं।
सुकेसी नचैं उर्वसी मान पावै ॥ २३ ॥

त्रिन बिच दै बोली सीय गंभीर बानी।
दसमुख सठ, को तू? कौन की राजधानी?
दसरथ-सुत द्वेषी रुद्र - ब्रह्मा न भासै।
निसिचर बपुरा तू क्यों न स्यों मूल नासै ॥ २४ ॥

अति तनु धनुरेखा, नेक नाकी न जाकी।
खल, खर-सर-धारा क्यों सहै तिच्छ ताकी ॥
बिड़-कन, घन घूरे भच्छि क्यों बाज जीवै?
सिवसिर ससि-श्री कों राहु कैसे सो छीवै ॥ २५ ॥

उठि-उठि, सठ, ह्यां तें भागु तौ लौं अभागे।
मम बचन बिसर्पी सर्प जौ लौं न लागे॥
बिकल सकुल देखौं आसु ही नास तेरो।
निठुर मृतक, तो को रोष मारे न मेरो॥ २६॥

अवधि दई द्वै मास की, कह्यो राच्छसिन बोलि।
ज्यों समुझै समुझाइयो, जुक्ति-छुरी सों छोलि॥ २७॥

देखि – देखि कै असोक राजपुत्रिका कह्यो।
देइ मोहि आगि तैं जो अंग आगि ह्वै रह्यो॥
ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई।
आस – पास देखि कै उठाइ हाथ कै लई॥ २८॥

जब लगी सियरी हाथ।
यह आगि कैसी, नाथ!
यह कह्यो लखि तब ताहि।
मनि-जटित मुँदरी आहि॥ २९॥

जब बांचि देख्यौ नांउ।
मन पर्‍यो संभ्रम-भाउ॥
आकास तैं रघुनाथ।
यह धरी अपने हाथ॥ ३०॥

बिछुरी सो कौन उपाउ।
केहि आनियो यहि ठांउ॥
सुधि लहौं कौन उपाउ।
अब काहि बूझन जाउँ॥ ३१॥

चहुँ ओर चितै सत्रास।
अवलोकियो आकास॥
तहँ साख बैठो नीठि।
तब पर्‌यो बानर डीठि॥ ३२॥

तब कह्यो, को तू आहि।
सुर असुर मो तन चाहि॥
कै जच्छ, पच्छ-विरूप।
दसकंठ, बानर-रूप॥ ३३॥

कहि आपनो तू भेद।
न तु चित्त उपजत खेद॥
कहि बेगि बानर, पाप।
न तु तोहिं दैहौं साप॥
तरि बृच्छ-साखा भूमि।
कपि उतरि आयो भूमि॥ ३४॥

कर जोरि कह्यो—'हौं पवन-पूत।
जिय, जननी, जानु रघुनाथ-दूत'॥
'रघुनाथ कौन ?' 'दसरत्थ-नन्द'।
'दसरत्थ कौन ?' 'अज-तनय चन्द'॥ ३५॥

'केहि कारन पठये यहि निकेत ?'
'निज देन लेन सन्देस हेत॥
'गुन रूप सील सोभा सुभाउ।
'कछु रघुपति के लच्छन बताउ'॥ ३६॥

'अति जदपि सुमित्रा-नन्द भक्त ।
अति सेवक हैं अति सूर सक्त ॥
अरु जदपि अनुज तीन्यों समान ।
पै तदपि भरत भावत निदान ॥ ३७ ॥

ज्यों नारायन उर श्री बसंति ।
त्यौं रघुपति उर कछु दुति लसंति ॥
जग जितने हैं सब भूमि भूप ।
सुर-असुर न पूजैं राम-रूप ॥ ३८ ॥

सीता

मोहि परतीति यहि भांति नहि आवई ।
प्रीति कहि धौं सु नर-बानरनि क्यों भई ॥
बात सब वर्नि परतीति हरि त्यौं दई ।
आंसु अन्हवाइ उर लाइ सुंदरि लई ॥ ३६ ॥

श्रीपुर में, बन मध्य हौं, तू मग करी अनीति ।
कहि मुंदरी अब तियन की, को करि है परतीति ॥४० ॥

कहि कुसल, मुद्रिके, रामगात ।
पुनि लछमन सहित समान तात ॥
यह उत्तर देत न बुद्धिवन्त ।
केहि कारन धौं हनुमन्त सन्त ॥ ४१ ॥

हनुमान

दोहा—तुम पूछत कहि,मुद्रिके, मौन होति यहि नाम ।
कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कहँ राम ॥ ४२ ॥

राज - पुत्रि, इक बात सुनः पुनि ।
रामचन्द्र मन माँह कही गुनि ॥
राति दीह जमराज - जनी जनु ।
जातनानि तन जानत के मनु ॥ ४३ ॥

दुख देखे सुख होहिगो, सुक्ख न दुक्ख विहीन ।
जैसे तपसी तप तपे, होत परमपद लीन ॥ ४४ ॥

बरसा - बैभव देखिकै देखो सरद सकाम ।
जैसे रन में काल भट भेंटि भेंटियत वाम ॥ ४५ ॥

दुक्ख देखिकै देखिहौं तव सुख आनँद-कन्द ।
तपन ताप तपि द्यौस निसि जैसे सीतल चन्द ॥ ४६ ॥

अपनी दसा कहा कहौं, दीप - दसा सी देह ।
जरत जाति बासर-निसा, केसव सहित सनेह ॥ ४७ ॥

कछु, जननि, दे परतीति जा सों रामचन्द्रहि आवई ।
सुभ सीस की मनि दई, यह कहि–सुजस तव जग गावई ॥
सब काल ह्वैहौ अमर अरु तुम समर जयपद पाईहौ ।
सुत, आज तें रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ ॥ ४८ ।

कर जोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो
पुनि जम्बुमाली मंत्रिसुत अरु पंच मंत्रि सँहारियो ॥
रन मारि अच्छकुमार बहु विधि इन्द्रजित सों जुद्ध कै ।
अति ब्रह्मसस्त्र प्रमान मानि सो बस्य भो मन सुद्ध कै ॥ ४९ ।

'रे कपि कौन तू अक्ष को घातक ?' 'दूत बली रघुनन्दन जू को।'
'को रघुनन्दन रे ?' त्रिशिरा खर-दूषन-दूषन भूषन भू को ॥'
'सागर कैसे तर्‌यो ?' 'जैसे गोपद,' 'काज कहा ?' 'सिय-चोरहिं देखौं',
'कैसे बँधायो ?' 'जो सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत, पातक लेखौं' ॥ ५० ॥

रावण

कोरि कोरि जातनानि फोरि-फोरि मारियें।
काटि-काटि फारि मांसु बांटि-बांटि डारियें ॥
खाल खैंचि-खैंचि हाड़ भूंजि भूंजि खाहु रे।
पौरि टांगि रुंड, मुंड लै उड़ाइ जाहु रे ॥ ५१ ॥

विभीषण

दूत मारियें न राजराज, छांड़ि दीजई।
मंत्रि मित्र पूंछि कै सो और दंड कीजई ॥
एक रंक मारि क्यों बड़ो कलंक लीजई।
बुंद सोखि गो कहा महा - समुद्र छीजई ॥ ५२ ॥

तूल तेल बोरि-बोरि जोरि-जोरि बासनी।
लै अपार रार ऊन दून सूत सौं कसी ॥
पूंछ पौनपूत की संवारि बारि दी जहीं।
अंग को घटाइ कै उड़ाई जात भो तहीं ॥ ५३ ॥

धाम-धामनि आगि की बहु ज्वाल माल बिराजहीं।
पौन के झकझोर तें झंझरी झरोखन भ्राजहीं ॥
बाजि बारन सारिका सुक मोर जोरन भाजहीं।
छुद्र ज्यों बिपदाहि आवत छोड़ि जात न लाजहीं ॥ ५४ ॥

जटी अग्निज्वाला अटा सेत है यों।
सरत्काल के मेघ संध्या-समै ज्यों॥
लगी ज्वाल धूमावली नील राजै।
मनो स्वर्न की किंकिनी नाग साजै॥ ५५॥

कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े।
मनौ ईस-रोसाग्नि में काम डाढ़े॥
कहूँ कामिनी ज्वालमालानि भोरैं।
तजैं लाल सारी अलंकार तोरैं॥ ५६॥

कहूँ भौन राते रचे धूम-छाहीं।
ससी-सूर मानौं लसैं मेघ माहीं॥
जरै सस्त्रसाला मिली गंधमाला।
मलै-अद्रि मानौ लगी दाव-ज्वाला॥ ५७॥

चली भागि चौहूँ दिसा राजरानी।
मिलीं ज्वाल-माला फिरैं दुक्खदानी॥
मनो ईस-बानावली लाल लोलैं।
सब दैत्यजायान के संग डोलैं॥ ५८॥

लंक लगाइ दई हनुमन्त बिमान बचे अति उच्चरुखी ह्वै।
पावक मैं उचटैं बहुधा मनि, रानी रटैं 'पानी-पानी' दुखी ह्वै॥
कंचन को पघिल्यो पुर पूर, पयोनिधि में पसरो सो सुखी ह्वै॥
गंग हजारमुखी गुनि, केसो, गिरा मिली मानो अपार मुखी ह्वै॥ ५९॥

हनुमत लाई लंक सब, बच्यो बिभीषन-धाम।
ज्यों अरुनोदय-बेर में, कंज पूरब-जाम॥ ६०॥

मेघनाद जो बाँधियो वहि, मारियो बहुधा तवै।
लोक-लाज दुरयो रहै अति, जानियै न कहां अबै॥ ५॥

कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि, न जानिये।
काँख चाँपि तुम्हैं जो सागर सात न्हात बखानिये॥
है कहां वह ? बीर अंगद देव-लोक बताइयो।
क्यों गयो ? रघुनाथ-बान-बिमान बैठि सिधाइयो॥ ६॥

लंकनायक को ? बिभीखन, देवदूखन को दहै।
मोहि जीवत होहि क्यों ? जग तोहि जीवत को कहै ?
मोहि को जग मारि है ? दुरबुद्धि तेरियै जानिये।
कौन बात पठाइयो, कहि बीर बेगि बखानिये॥ ७॥

श्रीरघुनाथ को बानर केसव आयो हो एक, न काहू हयो जू।
सागर को मद झारि चिकारि त्रिकूट की देह बिहारि गयो जू॥
सीय निहारि संहारि कै राच्छस सोक असोकबनीहि दयो जू।
अच्छकुमारहि मार के लंकहि जारिकै नीकेहि जात भयो जू॥ ८॥

राम राजान के राज आये इहां
धाम तेरे, महाभाग जागे अबै।
देवि मन्दोदरी कुंभकर्णादि दै मित्र-
मंत्री जिते, पूंछि देखो सबै।
राखियै जाति को, पाँति को, बंस को,
गोत को, साधियै लोक-पर्लोक को।
आनि कै पां परो, देस लै, कोस लै,
आसुही ईस-सीता चलै ओक को॥ ९॥

लोक लोकेस स्यों जो-जो ब्रह्मा रचे,
आपनी आपनी सींव सो-सो रहैं।

चारि बाहैं धरे विष्णु रच्छा करैं,
बात साँची यहै वेद-बानी कहै।
ताहि भ्रूभंग ही देव-देवेश स्यौं,
विष्णु ब्रह्मादि दै रुद्रहू संहरै।
ताहि हौं छोड़ि कै पांय काके परौं,
आजु संसार तो पाँय मेरे परै ॥ १० ॥

राम को काम कहा? रिपु जीतहिं, कौन कबै रिपु जीत्यो कहाँ।
बालि बली, छल सों, भृगुनन्दन-गर्व हर्‍यो, द्विज दीन महा ॥
दीन सु क्यों छिति-छत्र हत्यो, बिन प्रानन हैहयराज कियो।
हैहय कौन? वहै बिसर्‍यो? जिन खेलत ही तोहि बांधि लियो ॥ ११ ॥

सिंधु तर्‍यो उनको बनरा, तुम पै धनुरेख गई न तरी।
बानर बांधत, सो न बँध्यो, उन बारिधि बांधि कै बाट करी ॥
श्रीरघुनाथ प्रताप की बात तुम्हैं, दसकंठ, न जानि परी।
तेलहु-तूलहु पूँछ जरी न जरी, जरी लंक जराइ-जरी ॥ १२ ॥

छांडि दियो हम ही बनरा वह, पूँछ की आगिन लंक जरी।
नीर में अन्ध भर्‍यो चपि बालक, बारिहि जाय प्रशंसि करी ॥
ताल बिषै अरु सिंधु बँध्यो, यह चेटक, बिक्रम कौन कियो।
बानर को नर को बपुरा, पल में सुरनायक बांधि लियो ॥ १३ ॥

चेटक सों धनु भंग कियो, तब रावन के अति ही लघु हो।
बान समेत रहे पचिकै तहँ जो सँग पै न तज्यो धनु हो ॥
बान सु कौन? बली बलि को सुत, वै बलि बांवन बांधि लियो।
वैई सु तौ जिनकी सिर-चेरिन नाच नचाइ कै छांड़ि दियो ॥ १४ ॥

रावण

नील सुखेन हनू उनके नल, और सबै कपिपुंज तिहारे।
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपनो पदु लै, पितु जा लगि मारे॥
तो से सपूतहि जाय के बालि, अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हतै बपुमारे॥ १५॥

जो सुत अपने आप को बैर न लेइ प्रकास।
तासों जीवत ही मरयो लोग कहैं तजि आस॥ १६॥

इनको बिलगु न मानिये कहि केसव पल आधु।
पानी पावक पवन प्रभु ज्यो असाधु त्यों साधु॥ १७॥

उरसि, अंगद, लाज कछू गहौ।
जनक घातक बात वृथा कहौ॥
सहित लक्ष्मन रामहिं संहरौ।
सकल बानर-राज तुम्हें करौं॥१८॥

अङ्गद

सत्रु, सम, मित्र हम चित्त पहिचानहीं।
दूत बिधि नूत कबहूँ न उर आनहीं॥
आप मुख देखि अभिलाख अभिलाखहू।
राखि भुज-सीस तब और कहँ राखहू॥ १९॥

मेरी बड़ी भूल कहा कहौं रे।
तेरो कह्यो, दूत, सबै सहौं रे॥
वे जो सबै चाहत तोहि मारयो।
मारौं कहा तोहिं जो दैव मारयो॥ २०॥

नराच श्रीराम जहीं धरैंगे।
असेष माथे कटि भू परैंगे॥

सिखा सिवा-स्वान गहे तिहारी।
फिरे चहूँ ओर निरै—बिहारी॥ २१॥
महामोहु दासी सदा पाँइ धोवै।
प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर जोवै॥
छपानाथ लीन्हें रहै छत्र जाको।
करैगो कहा सत्रु सुग्रीव ताको॥ २२॥

सका मेघमाला, सिखी पाककारी।
करै कोतवारी महादंडधारी।
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके।
कहा बापरो सत्रु सुग्रीव ताके॥२३॥

अङ्गद

पेट चढ़्यौ पलना पलका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ़्यौ रे।
चौक चढ़्यौ चित्रसारि चढ़्यौ गजबाजि चढ़्यौ गढ़-गर्व चढ़्यौ रे॥
व्योम विमान चढ़्योई रह्यौ, कहि केसव, सो कबहूँ न पढ़्यौ रे।
चेतत नाहिं रह्यौ चढ़ि चित्त सों, चाहत मूढ़ चिताहू चढ़्यौ रे॥ २४॥

रावण

निकार्‌यो जु भैया लियो राज जाको।
दियो काढ़ि कै जू कहा त्रास ताको॥
लिये बानराली, कहौं बात तोसों।
जु कैसे जुरै राम संग्राम मोसों॥ २५॥

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाउँ कुठाउँ बिलैहै।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूँ सँग रैहै॥
केसव काम को राम बिसारत, और निकाम ते काम न ऐहै।
चेति रे चेति अजौं चित-अंतर, अंतक-लोक अकेलोई जैहै॥ २६॥

रावण

डरै गाय विप्रै, अनाथै जो भाजै।
पर-द्रव्य छांड़े, परस्त्रीहि लाजै॥
पर-द्रोह जासों न होवै रती को।
सो कैसे लरै वेस कीन्हें जती को॥॥ २७॥

गेंद करयौं मैं खेल को, हरिगिरि केसौदास।
सीस चढ़ाये आपने, कमल समान सहास॥ २८॥

जैसो तुम कहत उठायो एक हरगिरि,
ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं।
काटे जो कहत सीस, काटत घनेरे घाघ,
मगर के खेल क्यों सुभट-पद पावहीं॥
जीत्यों जो सुरेस-रन साप रिसि-नारि हू को,
समझहु हम द्विज-नाते समझावहीं।
गहौ राम-पाइँ सुख पाइ करै तपी तप,
सीता जू को देहु, देव दुंदुभी बजावहीं॥ २९॥

तपी जपी विप्रन छिप्रही हरौं।
अदेव-द्वेषी सब देव संहारौं॥
सिया न देहौं, यह नेम जी धरौं।
अमानुषी भूमि अबानरी करौं॥ ३०॥

पाहन ते पतिनी करी पावन, टूट कियो धनुहू हर को रे।
छत्र-विहीन करी छन में छिति, गर्व हरयौ तिनके बर को रे॥
पर्वत-पुंज पुरैनि के पात समान तरे, अजहूँ धरको रे।
होइँ नरायन हूपैं न ये गुन, कौन इहाँ नर, बानर को रे॥ ३१॥

देहिं अंगद राज तोकहँ मारि वानर राज को।
बाँधि देहिं बिभीखनै अरु फोरि सेतु-समाज को॥
पूँछ जारहिं अच्छरिपु की पाइँ लागहिं रुद्र के।
सीय को तब देहुँ रामहिं, पार जाइँ समुद्र के॥ ३२॥

अङ्गद

लंक लाय दियो बली हनुमन्त सन्तन गाइयो।
सिन्धु बाँधत सोधि कै नल छीर-छींट बहाइयो॥
ताहि तोहि समेत अंब, उखारि हौं उलटो करौं।
आजु राज कहां बिभीखन बैठिहै तेहि तें डरौं॥ ३३॥

अंगद रावन को मुकुट लै करि उड्यो सुजान।
मनो चल्यो जमलोक को दससिर को प्रस्थान॥ ३४॥

(३) रामाश्वमेध

विश्वामित्र वसिष्ठ सों एक समै रघुनाथ ।,
आरंभ्यो, केशव, करन अश्वमेध की गाथ ॥ १ ॥

राम

मैथिली समेत तौ अनेक दान मैं दियो ।
राजसूय आदि दै अनेक जग्य मैं कियो ॥
सीय-त्याग-पाप तें हिये सु हौं महा डरौं ।
और एक अश्व मेध जानकी विना करौं ॥ २ ॥

धर्म-कर्म कछु कीजई, सफल तरुनि के साथ ।
ता बिनु जो कुछ कीजई निसफल सोई, नाथ ॥ ३ ॥

करिये सुत भूखन रूपरयी,
मिथिलेस-सुता इक रवनमयी ।
रिसिराज सबै रिसि बोलि लिये,
सुचि सों सब जग्य बिधान किये ॥ ४ ॥

हयसालन तें हय छोरि लयो,
ससि वर्न सो केसव सोभरयो ।
श्रुति स्यामल एक बिराजतु है,
अलिस्यों सरसीरुह लाजतु है ॥ ५ ॥

पूजि रोचन स्वच्छ अच्छत, पट बाँधिय भाल।
भूखि भूखन सत्रुसूदन छाँड़ियो तेहि काल॥
संग लै चतुरंग सेनहि सत्रुहन्ता साथ।
भाँति-भाँतिन मान दै पठये सु श्री रघुनाथ॥ ६॥

जात हैं जित बाजि, केशव, जात हैं तित लोग।
बोलि बिप्रन दान दीजत जत्र-तत्र सभोग॥
बेनु-बीन मृदंग बाजत, दुंदुभी बहु भेव।
भाँति भाँतिन होत मंगल देव से नर-देव॥ ७॥

राघव की चतुरंग चमू-चय, को गनै केसव राज समाजनि।
सूर-तुरंगन के उरझैं पग, तुंग पताकनि की पट साजनि॥
टूटि परैं तिन तें मुकता धरनी, उपमा बरनी कविराजनि।
बिन्दु किधौं मुखफेनन के किधौं राजसिरी स्रवै मंगललाजनि॥ ८॥

राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी, जलहू थल छाई।
मानो प्रताप-हुतासन-धूम सो, केसवदास, अकास नमाई॥
मेटि कै पंच प्रभूत किधौं बिधि रेनुमयी नव रीति चलाई।
दुक्ख-निवेदन को भुव-भार को भूमि किधौं सुरलोक सिधाई॥ ९॥

नाद पूरि, धूरि पूरि, तूरि बन, चूरि गिरि,
सोखि-सोखि जल भूरि भूरि थल-गाथ की।
केसौदास आस-पास ठौर-ठौर राखि जन,
तिन की संपति सब आपने ही हाथ की।
उन्नत नवाइ नत उन्नत बनाइ भूप,
सत्रुन की जीविका सु मित्रन के साथ की।

मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिसि-दिसि जीति सेना रघुनाथ की ॥ १० ॥

दिसि बिदिसिन अवगाहि कै, सुख ही केसवदास ।
बालमीकि के आस्रमहिं, गयो तुरन्त प्रकास ॥ ११ ॥

दूरिहि ते मुनि – बालक धाये,
पूजित बाजि विलोकन आये ।
भाल को पट्ट जहीं लव बाँच्यो,
बाँधि तुरंगम जयरस राच्यो ॥ १२ ॥

एकवीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः ।
तेन रामेण मुक्तोऽसौ बाजी गृह्णात्विमं बली ॥ १३ ॥

घोर चमू चहुँ ओर तें गाजी,
कौनेहि रे यह बाँधियो बाजी ॥
बोलि उठे लव, मैं यहि बाँध्यो,
यों कहिकै धनुसायक साँध्यो ॥
मारि भगाय दिये सिगरे यों,
मन्मथ के सर ज्ञान घने ज्यों ॥ १४ ॥

योधा भगे वीर शत्रुघ्न आये,
कोदण्ड लीन्हें महा-रोस छाये ।
ठाढ़ो तहाँ एक बालै विलोक्यो,
रोक्यो तहीं जोर नराच मोक्यो ॥ १५ ॥

शत्रुघ्न

बालक छाँड़ि दे छाँड़ि तुरंगम ।
तो सों कहा करौं संगर-संगम ॥

ऊपर बीर, हिये करुना रस।
बीरहिं बिप्र हते न कछू जस ॥ १६ ॥

लव

कछु बात बड़ी न कही मुख थोरे,
लव सों न जुरो लवनासुर भोरे।
द्विज-दोस, नहीं बल, ताहि सँहार्यो,
मरही जु रह्यो सु कहा तुम मार्यो ॥ १७ ॥

राम बन्धु बान तीनि छाँडियो त्रिसूल से।
भाल में बिसाल ताहि लागियो ते फूल से ॥

लव

घात कीन्ह, रात-तात, गाततें कि पूजियो।
कौन सत्रु तू हत्यो, जु नाम सत्रुहा लियो ॥ १८ ॥

रोस करि बान बहु भाँति लव छंडियो।
एक ध्वज, सूत युग, तीन रथ खंडियो।
सस्त्र दशरत्थसुत अस्त्र कर जो धरै।
ताहि सीयपुत्र तिल-तूल सम खंडरै ॥ १९ ॥

रिपुहा तब बान वहै कर लीन्हो।
लवनासुर को रघुनन्दन दीन्हो ॥
लव के उर में उरझ्यो वह पत्री।
मुरझाइ गिरायो धरनी महँ छत्री ॥ २० ॥

मोहे लव भूमि परे जबहीं,
जै-दुंदुभि बाजि उठे तबहीं।
भू तें रथ ऊपर आनि धरे,
सत्रुघ्न सु यों करुनाहि भरे ॥ २१ ॥

घोरो तबही तिन छोरि लयो,
सत्रुघ्नहि आनन्द चित्त भयो ॥
लैकै लव को ते चले जबहीं,
सीता पहँ बाल गये तबहीं ॥ २२ ॥

वालक

सुनु, मैथिली, नृप एक को लव बाँधियो बर बाजि।
चतुरंग सेन भगाइ कै सब जीतियो वह आजि ॥
उर लागि गो सर एक को भुव में गिरो मुरझाय।
तब बाजि लै लव लै, चल्यो, नृप दुंदुभीन बजाय ॥ २३

सीता गीता पुत्र की सुनि कै भई अचेत।
मनो चित्र की पुत्रिका मन-क्रम-बच समेत ॥ २४ ॥

रिपुहाथ श्रीरघुनाथ को सुत क्यों परै करतार।
पतिदेवता सब काल तौ लव जी उठै यहि बार ॥
रिषि हैं नहीं, कुस है नहीं, लव लेइ कौन छँड़ाइ।
बन माँझ टेर सुनी जहीं कुस आइयो अकुलाइ ॥ २५ ॥

कुश

रिपुहि मारि संहारि दल यम तें लेहुँ छँड़ाइ।
लवहि मिले हौं देखिहौं, माता, तेरे पाइ ॥ २६ ॥

गाहियो सिंधु सरोवर सो जेहि बाल बलो वरसो वर पेरयो।
ढाहि दिये सिर रावन के गिरि से गुरु जात न जा तन हेरयो॥
साल समूल उखारि लिये लवनासुर, पीछे ते आइ सो टेरयो।
राघव को दल मत्त करीस्वर, अंकुस दै कुस केसव, फेरयो॥ २७॥

कुश की टेर सुनी जहीं, फूलि फिरे शत्रुघ्न।
दीप विलोकि पतंग ज्यों, जदपि भयो बहु विघ्न॥ २८॥

रघुनन्दन को अवलोकत ही कुस।
उर माँझ हयो सर शुद्ध निरंकुस॥
ते गिरे रथ ऊपर लागत ही सर।
गिरि ऊपर ज्यों गजराज-कलेवर॥ २९॥

जूझि गिरे जबहीं अरिहा रन॥
भाजि गये सबही भट के गन।
काढ़ि लियो जबहीं लव को सर।
कंठ लग्यो तबहीं उठि सोदर॥ ३०॥

मिले जु कुस लव कुसल सों, बाजि बाँधि तरुमूल।
रन महिं ठाढ़े सोभिजैं, पसुपति - गनपति तूल॥ ३१॥
जग्य मंडल में हुते रघुनाथ जू तेहि काल।
चर्म अंग कुरंग को, सुभ स्वर्न की सँग बाल॥
आस पास ऋषीश सोभित, सूर सोदर साथ।
आइ भग्गुल लोग बरनी, युद्ध की सब गाथ॥ ३२॥

भग्गुल

बालमीकि-थल बाजि गयो जू।
विप्र बालकनि घेरि लयो जू॥

एक बाँचि पटु घोटक बाँध्यो।
दौरि दीह धनु-सायक साँध्यो ॥ ३३ ॥

भाँति भाँति सब सैन सँहारयो।
आपु हाथ जनु ईस सँवारयो ॥
अस्त्र-सस्त्र तुव बन्धु जु धारयो।
खंडखंड करि ता कहँ डारयो ॥ ३४ ॥

रोष बेष वह बान, लयो जू।
इन्द्रजीत लगि आपु दयो जू ॥
काल-रूप उर माहिं हयो जू।
वीर मूर्छि तब भूमि भयो जू ॥ ३५ ॥

वहि वीर लै अरु बाजि।
जबही चले दल साजि ॥
तब और बालक आनि।
मग रोकियो तजि कानि ॥ ३६ ॥

तेइ मारियो तुव बंधु।
दल है गयो सब अंधु ॥
वहि बाजि लै अरु वीर।
रन में रह्यो रुपि धीर ॥ ३७ ॥

बुधि बल-विक्रम रूप गुन, सील तुम्हारे, राम।
काकपक्ष-धर बाल द्वै जीते सब संग्राम ॥ ३८ ॥

राम

गुन गुन प्रतिपालक, रिपुकुल-घालक बालक ते रनरंता।

दसरथ नृप को सुत मेरो सोदर लवनासुर को हंता ॥
कोऊ द्वै मुनि-सुत काकपक्षजुत सुनियत है तिन मारे।
यहि जगत-जाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे ॥ ३६ ॥

लच्छन सुभ लच्छन, बुद्धि बिचच्छन लेहु बाजि को सोधु।
मुनि सिसु जनि मारेहु, बधु न बिचारेहु, क्रोध न करेहु प्रबोधु ॥
बहु सहित दच्छिना दै प्रदच्छिना चल्यो, परम रन वीर।
देख्यो मुनि बालक, सोदर, उपज्यो करुना अद्भुत वीर ॥ ४० ॥

कुश

लक्ष्मन को दल दीरघ देखौ।
कालहु तें अति भीम, विसेखौ ॥
दो मैं कहौ सो कहा, लव, कीजै।
आयुध लैहौ कि घोटक दीजै ॥ ४१ ॥

लव

बूझत हौ तो यहै मतु कीजै।
मो असु दै वह अस्व न दीजै ॥
लक्ष्मन को दल-सिन्धु निहारो।
ता कहँ बान अगस्त तिहारो ॥ ४२ ॥

एक यहै घटि है अरि घेरे।
नाहिन हाथ सरासन मेरे ॥
नेकु जहाँ दुचितो चित कीन्हो।
सूर तहाँ इषुधी धनु दीन्हो ॥ ४३ ॥

लै धनु बान बली तब धायो।
पल्लव ज्यों दल मारि उड़ायो ॥

यों दुउ सोदर सैन सँहारैं।
ज्यौं वन – पावक पौन बिहारैं॥ ४४॥

भागत हैं भट यौं लव आगे।
राम के–नाम तें ज्यौं अघ भागे॥
यूथपयूथ यौं मारि भगायो।
बात बड़ो जनु मेघ उड़ायो॥ ४५॥

अति रौस-रसे कुस केसव, श्री रघुनायक सों रन–रीत रचै।
तेहि वार न बार भई, बहु वारन खर्ग हने, न गिनैं विरचैं॥
तहँ कुंभ फटैं, गजमोति कटैं, ते चले वहि स्रोनित रोचि रचैं।
परि-पूरन पूर पनारन तें जनु पीक कपूरन की किरचैं॥ ४६॥

भगे चये चमू चमूप छाँडि छाँडि लक्ष्मनै।
भगे रथी महारथी गयन्द-वृन्द को गनै॥
कुसै लवै निरंकुसै बिलोकि बन्धु राम को।
उठ्यो रिसाय कै बली बँध्यो जु लाज-दाम को॥ ४७॥

कुश

न हौं मकराक्ष न हौं इन्द्रजीत।
बिलोकि तुम्हैं रन होहुँ न भीत॥
सदा तुम लक्ष्मन उत्तमगाथ।
करौ जनि आपनि मातु अनाथ॥ ४८॥

लक्ष्मण

कहौ कुस जो कहि आवति बात।
बिलोकत हौ उपवीतहिं गात॥

इते पर बाल बड्क्रम जानि।
हिये करुना उपजैं अति आनि॥ ४६॥

बिलोचन-लोचत हैं लखि तोहि।
तेजौ हठ आनि भजौ किन मोहि॥
छम्यो अपराव, अजौं घर जाहु।
हिये उपजाउ न मातहि. दाहु॥ ५०॥

हौं हतिहौं कबहूँ नहिं तोहौं।
तू बरु बानन बेधहिं मोहौं॥
बालक – विप्र कहा हनियै जू।
लोक – अलोकन में गनियै जू॥ ५१॥

लच्छमन हाथ हथ्यार धरो।
जय बृथा प्रभु को न करो॥
हौं. हय को कबहूँ न तजौं।
पट्ट लिख्यो, सोइ बाँचि लजौ॥ ५२॥

बान एक तब लच्छमन छंड्यो।
चर्म बर्म बहुधा तेहि खंड्यो॥
ताहि हीन कुस चित्तहि मोहै।
धूम – भिन्न जनु पावक सोहै॥ ५३॥

रोस – बेस कुस बान चलायो॥
पौन – चक्र जिमि चित्त भ्रमायो।
मोह – मोहि रथ ऊपर सोये।
ताहि देखि जड़-जंगम रोये॥ ५५॥

विराम राम जानिकै भरत्थ सों कथा कहैं।
विचारि चित्त माँहि वीर, वीर वै कहाँ रहैं॥
सरोस देखि लक्ष्मनैं त्रिलोक तौ विलुप्त है।
अदेव-देवता नरैं, कहा ते वाल दीन ह्वै॥ ५५॥

जाहु सत्वर, दूत, लक्ष्मन हैं जहाँ यहि वार।
जाइ कै यह वात वर्नहु रच्छियो मुनि-वार॥
हैं समर्थ सनाथ, वै असमर्थ और अनाथ।
देखिवे कहँ लाइयो मुनि-वाल उत्तम-गाथ॥ ५६॥

सम्मुख आइ गयें तबहीं बहु।
वार पुकारत आरत रच्छहु॥
वे बहु भांतिन सैन सँहारत।
लक्ष्मन तौ तिनको नहिं मारत॥ ५७॥

बालक जानि तजे करुना करि।
वे अति ढीठ भये दल संहारि॥
केहुँ न भाजत गाजत हैं रन।
वीर अनाथ भये विन लक्ष्मन॥ ५८॥

जानहु जै उनको मुनिबालक।
वे कोउ हैं जगती प्रतिपालक॥
हैं कोउ रावन के कि सहायक।
कै लवनासुर के हितलायक॥ ५९॥

भरत

बालक रावन के न सहायक।

ना लवनासु के हित लायक ॥
हैं निज पातक-वृच्छन के फल।
मोहत है रघुवंसिन के बल ॥ ६० ॥

जीतहि को रन माहिं रिपुन्नहिं।
को करै लच्छमन के बल बिन्नहिं ॥
लच्छमन सीय तजी जब तें बन।
लोक-अलोकन पूरि रहे तन ॥ ६१ ॥

छोड़न चाहत तें तब ते तन,
पाइ निमित्त कर्यो मन पावन।
भाइ तज्यो तन सोदर लाजनि,
पूत भये तज पाप-समाजनि ॥ ६२ ॥

पातक कौन तजी तुम सीता,
पावन होत सुने जग गीता।
दोस विहीनहिं दोस लगावै,
सो प्रभु ये फल काहे न पावै ॥ ६३ ॥

हौं तेहि तीरथ जाय मरौंगो।
संगति-दोष असेष हरौंगो ॥ ६४ ॥

बानर राच्छस रिच्छ तिहारे,
गर्ब चढ़े रघुवंसहिं मारे।
ता लगि कै यह बात बिचारी,
हौं प्रभु संतत गर्ब-प्रहारी ॥ ६५ ॥

क्रोध कै अति भरत अंगद संग संगर को चले।
जामवन्त चले विभीखन और वीर भले-भले॥
को गनै चतुरंग सेनहिं रोदसी नृपता भरी।
जाइकै अवलोकियो रण में गिरि गिरे से करी॥ ६६॥

जामवन्त विलोकियौ रन भीम भू हनुमन्त।
स्रोन की सरिता बही सु अनन्त रूप दुरन्त॥
जत्र-तत्र ध्वजा पताका दीह देहनि भूप।
टूटि-टूटि परे मनो बहु बात वृच्छ अनूप॥ ६७॥

पुंज कुंजर सुभ्र स्यन्दन सोभिजैं सुठि सूर।
ठेलि ठेलि चले गिरीसनि पेलि सोनित पूर।
ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारु चर्म विसाल।
चक्र से रथचक्र पैरत वृद्ध गृद्ध मराल॥ ६८॥

केकरैं कर, बाहु मीन, गयंद सुंड भुजंग।
चीर चौंर सुदेस केस सिवाल जानि सुरंग॥
बालुका बहु भाँति हैं मणिमालजाल प्रकास।
पैरि पार भये ते द्वै मुनिबाल केसवदास॥ ६९॥

नाम-बरन लघु, वेस लघु, कहत रीझि हनुमन्त।
इतो बड़ो विक्रम कियो, जीते जुद्ध अनन्त॥ ७०॥

भरत

हनुमन्त, दुरन्त नदी अब नाखौ।
रघुनाथ सहोदर जू अभिलाखौ॥

तब जो तुम सिंधुहि बाँधि गये जू।
अब बाँधहु काहे न, भीत भये जू ॥ ७१ ॥

हनुमान

सीता पद सन्मुख हुते, गयो सिंधु के पार।
बिमुख भयो क्यों जाहुँ तरि, सुनो भरत, यहि बार ॥ ७२ ॥

धनु-बान-लिये मुनि-बालक आये।
जनु मन्मथ के युग रूप सोहाये॥
करिके कहँ सूरन के मद हीने।
रघुनायक मानहु द्वै वपु कीने ॥ ७३ ॥

भरत

मुनि-बालक हौ तुम जज्ञ करावो।
सु कियों मख-बाजिहि बाँधन आवो॥
अपराध छमौ, अब आसिष दीजै।
हर बाजि तजौ, जिय रोस न कीजै ॥ ७४ ॥

बाँध्यो पट जो सीस यह, छत्रिन काज प्रकास।
रोष करयो जिन आज तुम, हम विप्रन के दास ॥ ७५ ॥

कुश

बालक-वृद्ध कहौ तुम काको।
देहनि को, कियौं जीव-प्रभा को॥
है जड़ देह, कहै सब कोई।
जीव सो बालक-वृद्ध न होई ॥ ७६ ॥

जीव जरै न मरै नहिं छीजै।
ता कहँ सोक कहा अब कीजै॥
जीवहि बिप्र न छत्रिय जानो।
केवल ब्रह्म हिये महँ आनो॥ ७७॥

जो तुम देव हमें कछु सिच्छा।
तो हम देहिं तुम्हें हय-भिच्छा॥
चित्त बिचार परै सोई कीजै।
दोस कछू न हमें अब दीजै॥ ७८॥

बिप्र-बालकन की सुनी बानी।
क्रुद्ध सूरसुत भो अभिमानी।
बिप्र-पुत्र, तुम सीस सँभारो॥
राखि लेहि अब ताहि पुकारो॥ ७९॥

लव

सुग्रीव, कहा तुम सों रन माँडौं।
तो को अति कायर जानिकै छाँडौं॥
बालि तुम्हें बहु नाच नचायो,
कहा रन मंडन मो सन आयो ?॥ ८०॥

फल-हीन सो ता कहँ बान चलायो।
अति बात भ्रम्यो, बहुधा मुरझायो॥
तब दौरिकै बान बिभीखन लीन्हो।
लव ताहि बिलोकत ही हँसि दीन्हो॥ ८१॥

आउ बिभीखन तू रन दूखन। एक तुही कुल को निज भूखन।
जूझि जुरे जे भले भय जी के। सत्रुहि आनि मिले तुम नीके ॥ ८२ ॥

देव-बधू जबहीं हरि ल्यायो। क्यों तबहीं तजि ताहि न आयो।
यों अपने जिय के डर आयो। छुद्र, सबै कुल-छिद्र बतायो ॥ ८३ ॥

जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान।
ता की पत्नी तू करी पत्नी मातु समान ॥ ८४ ॥

को जानै कै बार तू कही न ह्वै है माइ।
सोई तैं पत्नी करी, सुनु पापिन के राइ ॥ ८५ ॥

सिगरे जग माँझ हँसावत है,
रघुबंसिन पाप लगावत है।
धिक तो कहँ तू अजहूँ जो जियै,
खल, जाइ हलाहल क्यों न पियै ॥ ८६ ॥

कछु है अब तो कहँ लाज हिये,
कहि कौन विचार हथ्यार लिये।
अब जाय करीस की आगि जरौ,
गरु बाँधि कै सागर बूड़ि मरौ ॥ ८७ ॥

कहा कहौं हौं भरत को, जानत है सब कोइ।
तो सो पापी संग है, क्यों न पराजय होइ ॥ ८८ ॥

बहुत जुद्ध भो भरत सौं, देव-अदेव समान।
मोहि महारथ पर गिरे, मारे मोहन बान ॥ ८९ ॥

भरतहि भयो विलम्ब कछु, आये श्रीरघुनाथ।
देख्यो वह संग्राम-थल, जूझि परे सब साथ॥ ६० ॥

रघुनाथहिं आवत आइ गये।
रन-में मुनि : बालक-रूपरये।
गुन-रूप-सुसीलनसों रन में,
प्रतिबिम्ब मनो निज दर्पन में॥ ६१ ॥

सीता समान मुखचन्द्र विलोकि राम।
बूझ्यो कहाँ बसत हौ तुम, कौन ग्राम॥
माता-पिता कवन, कौनेहु कर्म कीन।
विद्या-विनोद सिख कौनेहि अस्त्र दीन॥ ६२ ॥

कुश

राजराज, तुम्हें कहा मम बंस-सों अब काम।
बूझि लीजो ईस-लोगन जीति कै संग्राम॥

राम

हौं न युद्ध करौं कहे बिन विप्र-बेस विलोकि।
बेगि बीर कथा कहौ तुम आपनी रिस रोकि॥६३॥

कुश

कन्यका मिथिलेस की हम पुत्र जाये दोइ।
बालमीक असेस कर्म करे कृपा-रस भोइ॥
अस्त्र-सस्त्र सबै दये अरु बेद-भेद पढ़ाइ।
बाप को नहिं नाम जानत आजु लौं, रघुराइ॥६४॥

अंगद हाथ गहै तरु जोई,
जात तहीं तिल सो कटि सोई।
पर्वत-पुञ्ज जिते उन मेले,
फूल कै तूल ले बानन झेले ॥९९॥

बानन बेधि रही सब देही,
बानर ते जु भये अब सेही।
भूतल तें सर मारि उड़ायो,
खेल के कंदुक को फल पायो ॥१००॥

सोहत है अध-ऊपर ऐसे,
होत दटा नट को नभ जैसे।
जान कहूँ न इतै-उत पावै,
गो बल, चित्त दसौ दिसि धावै ॥१०१॥

बोल घट्यो सु, भयो सुर भङ्गी,
ह्वै गयो अंग त्रिसंकु को संगी।
हा रघुनायक हौं जन तेरो,
रच्छहु गर्ब गयो सब मेरो ॥१०२॥

दीन सुनी जन की जब बानी,
जो करुना तब बानन आनी।
छोड़ि दियो गिरि भूमि परयोई,
व्याकुल ह्वै अति मानो मरयोई ॥१०३॥

भैरव से भट भूरि भिरे बल खेत खरे, करतार करे के।
मारे भिरे रन भूवर भूप, न टार टरे, इम कोट अरे के॥

सोनित सलिल नर-बानर सलिलचर,
गिरि बालिसुत, विष बिभीषन डारे हैं।
चमर-पताका बड़ी बड़वा—अनल सम,
रोगरिपु जामवन्त, केसव विचारे हैं।
बाजि सुरबाजि, सुरगज से अनेक गज,
भरत सबन्धु इन्दु-अमृत निहारे हैं।
सोहत सहित सेस रामचन्द्र केसव वे,
जीति कै समर—सिन्धु स चेहूँ सँवारे हैं ॥११५॥

सीता

मनसा-वाचा-कर्मना जो मेरे मन राम।
तो सब सेना जी उठे, होहि घरी न विराम ॥११६॥

जीय उठीं सब सेन सभागी।
केसव सोवत तें जनु जागी॥
त्यों सुत सीतहिं लै सुखकारी।
राघव के सुनि पाँयन पारी ॥११७॥

सुभ सुन्दर सोदर पुत्र मिले जहँ।
बरसा बरसैं सुर फूलन की तहँ॥
बहुधा दिवि दुन्दुभि के गन बाजत।
दिगपाल गयंदन के गन लाजत ॥११८॥

अंगद

रामदेव, तुम गर्व-प्रहारी।
नित्य तुच्छ अति बुद्धि हमारी॥

जुद्ध देउ, श्रम तें कहि आयो।
दास जानि प्रभु मारग लायो॥ ११६॥

सुंदरी सुत लै सहोदर बाजि लै सुख पाइ।
साथ लै मुनि बालमीकहि दीह दुक्ख नसाइ॥
राम धाम चले भले जस लोक-लोक बढ़ाइ।
भाँति भाँति सुदेस केसव दुन्दुभीन बजाइ॥

भरत लच्छमन सत्रुहा पुर भीर टारत जात।
चौंर ढारत हैं दुहूँ दिसि पुत्र उत्तम गात॥
छत्र है कर इन्द्र के सुभ सोभिजै बहु भेव।
मत्तदंति चढ़े पढ़ै जय सब्द देव नृदेव॥ १२१॥

जग्य-थली रघुनन्दन आये।
धामनि-धामनि होत बधाये॥
श्रीमिथिलेस-सुता बड़भागी।
स्यों सुत सासुन के पग लागी॥॥ १२२॥

चारिपुत्र द्वै पुत्रसुत कौसल्या तब देखि।
पायो परमानंद मन दिगपालन सम लेखि॥
जग्य पूरन कै रमापति दान देत असेस।
हीर नीरज छीर मानिक बरसि वर्षा बेस॥
अंगराग तड़ाग बाग फल भले बहु भाँति।
भवन भूसन भूमि भाजन भूरि बासर-राति॥ १२१॥

एक अयुत-गज, बाजि द्वै, तीनि सुरभि सुभ लर्न।
एक-एक द्विजहिं दई केसव सहित सुवर्न॥

देव अदेव नृदेव अरु जितने जीव त्रिलोक ।
मन भायो पायो सबन, कीन्हे सबन असोक ॥ १२५ ॥

अपने अरु सोदरन के, पुत्र विलोकि समान ।
न्यारे-न्यारे देस दै, नृपति करे भगवान ॥ १२६ ॥

कुस-लव अपने भरत, के नन्दन पुष्कर-तच्छ ॥
लच्छमन के अंगद भये, चित्रकेतु रनदच्छ ॥ १२७ ॥

भले पुत्र शत्रुघ्न द्वै दीप जाये ।
सदा साधु सूरे बड़े भाग पाये ॥
सदा मित्र-पोसी हनै सत्रु-घाती ।
सुबाहै बड़ो, दूसरो सत्रुघाती ॥ १२८ ॥

कुस को दई कुसावती नगरी कोसल देस ।
लव को दई अवन्तिका उत्तर उत्तम देस ॥ १२९ ॥

पश्चिम पुष्कर को दई, पुष्करवति है नाम ।
तच्छशिला तच्छहि दई, लई जीति संग्राम ॥ १३० ॥

अंगद कहँ अंगद नगर दीन्हों पूरब ओर ।
चंद्रकेतु चंद्रावती दीन्ही उत्तर ओर ॥ १३१ ॥

मथुरा दई सुबाहु कहँ, पूरन-पावन गाथ ।
सत्रुघात कहँ नृप करयो देसहि को रघुनाथ ॥ १३२ ॥

यहि भाँति सुरक्षित भूमि भई ।
सब पुत्र-मनोरथ भाँति दई ॥

सब पुत्र महाप्रभु बोलि लिये।
वहु भाँतिन के उपदेस दिये॥ १३३॥

बोलिये न झूठ, ईठि मूढ़ पै न कीजई।
दीजिये जु वस्तु हाथ भूलिहू न लीजई॥
नेहू तोरिये न देहु, दुक्ख मन्त्र-मित्र को।
जत्र-तत्र जाहु पै पत्याहु जै अमित्र को॥ १३४॥

जुवा न खेलिये कहूँ, जुवान बेद रच्छिये।
अमित्र-भूमि माहिं जे अभच्छ भच्छ भच्छिये॥
करौ न मंत्र मूढ़ सों, न गूढ़ मंत्र खोलिये।
सुपुत्र होहु जै हठी, मठीन सों न बोलिये॥ १३५॥

वृथा न पीड़िये प्रजाहि, पुत्र मानि पारिये।
असाधु-साधु बूझि कै जथापराध मारिये॥
कुदेव देव नारि को न बाल-वित्त लीजिये।
बिरोध बिप्र बंस सों सु स्वप्नहू न कीजिये॥ १३६॥

पर द्रव्य को तो विस प्राय लेखो।
परस्त्रीन को ज्यों गुरु-स्त्रीन देखो॥
तजो काम क्रोधै महा मोह लोभै।
तजो गर्व को सर्वदा चित्त छोभै॥ १३७॥

जसै संग्रहौ निग्रहौ जुद्ध जोधा।
करौ साधु संसर्ग जो बुद्धि-बोधा॥
हितू होय सो देइ जो धर्म-शिच्छा।
अधर्मीन को देहु जै वाक भिच्छा॥ १३८॥

कृतघ्नी कुवादी परस्त्री–विहारी।
करौ विप्र लोभी न धर्माधिकारी॥
सदा द्रव्य संकल्प को रच्छि लीजै।
द्विजातीन को आपु ही दान दीजै॥ १३९॥

तेरह–मंडल-मंडित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम साधे।
कैसहु ता कहँ सत्रु न मित्र सु, केसवदास, उदास न बाधे॥
सत्रु समीप, परे तेहि मित्र, सु तासु परे जो उदास कै जोवै।
बिग्रह, संधिनि, दाननि सिन्धुलौं लै चहुँओरनि तौ सुख सोवै॥ १४०॥

राजश्री बस कैसेहू होहू न उर–अवदात।
जैसे–तैसे आपुबस ता कहँ कीजै तात॥ १४१॥

मुक्तक-कवि केशव

(१) रामचंद्रिका

राजा दशरथ

बिधि के समान हैं बिमानीकृत-राजहंस,
विविध-विबुध- जुत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति, सातौं दीप दीपियतु,
दूसरो दिलीप सो सुदच्छिना को बल है।
सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति,
छनदा-न-प्रिय किधौं सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दसरथ
भगीरथ-पथ-गामी गंगा को सो जल है ॥१॥

विश्वामित्र आश्रम

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल वंजुल तिलक लकुच-चल नारिकेर वार ॥ २ ॥
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं।
सारी-सुक-कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं ॥ ३ ॥
सुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूर गन।
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केसौदास विचित्र बन ॥ ४

सूर्योदय

चढ़्यो गगन-तरु धाइ दिनकर-बानर अरुन-मुख।
कीन्हो झुकि झहराइ सकल तारका-कुसुम बिनु ॥ ५ ॥
जहाँ वारुनी की करी रंचक रुचि द्विजराज।
तहाँ कियो भगवंत बिनु संपति-सोभा-साज ॥ ६ ॥

जनकपुरी

ते न नगरि ति ागरी प्रति-पद हंसक हीन।
जलज-हार सोभित न जहं, प्रगट पयोधर पीन ॥ ७ ॥

धनुर्भंग

प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार-मद,
चंड को दंड रह्यो मंडि नवखंड को।
चालि अचला अचल, घालि दिगपाल-बल,
पालि रिसि-राज के बचन परचंड को।
सोधु दै ईस को, बोधु जगदीस को,
क्रोध उपजाय भृगुनंद बरिबंड को।
बाधि बर स्वर्ग को, साधि अपवर्ग-
धनुभङ्ग को सब्द गयो भेदि ब्रह्मंड को। ८

परशुराम

कुस-मुद्रिका समिधैं स्रुवा कुस औ कमंडलु को लिये।
कर-मूल सर-धनु तर्कसो, भृगु-लात सी दरसै हिये॥
धनु-बान, तिच्छ कुठार, केसव, मेखला-मृगचर्म स्यों।
रघुबीर को यह देखिये, रस-बीर सात्विक-धर्म स्यों ॥ ९ ॥

बर बान-सिखीन असेस समुद्रहि सोखि, सखासुखही तरिहौं।
अरु लंकहि औटि कलंकित की पुनि पंक कनंकहि को भरिहौं॥
भल भूंजि कै राख सुखै करिकै, दुख दीरघ देवन के हरिहौं।
सितकंठ के कंठहि को कठुला दसकंठ के कंठन को करिहौं॥१०॥

बोरौं सबै रघुवंस कुठार की धार में बारनि बाजि सरत्थहिं।
बान की बायु उड़ाय के लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं॥
रामहिं बाम समेत पठै बन कोप के भार में भूँजौ भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तो आजु अनाथ करौं दसरत्थहिं॥११॥

तव एक बिंसति बेर मैं बिन छत्र की पृथिवी रची।
बहु कुण्ड सोनित सों भरे पितु-तर्पनादि क्रिया सची॥
उबरे जु छत्रिय छुद्र भूतल सोधि सोधि सँहारिहौं।
अब बाल बृद्ध व ज्वान छाँडहुँ, धर्म निर्दय पारिहौं॥१२॥

बिषयी की ज्यों पुष्पसर गति को हनत अनंग।
रामदेव त्यौंही करी परसुराम गति भङ्ग॥१३॥

वन में राम-सीता और लक्ष्मण

बिपिन मारग राम बिराजहीं,
सुखद सुन्दरि सोदर भ्राजहीं।
बिबिध श्रीफल सिद्ध मनो फलो,
सकल साधन-सिद्धिहि लै चलो॥१४॥

मेघ मंदाकिनी चारु सौदामिनी रूप-रूरे लसैं देहधारी मनों।
भूरि भागीरथी भारती हंसजा अंस के हैं मनो, भाग भारे भनों॥
देवराजा लिये देवरानी मनो पुत्र-संजुक्त भूलोक में सोहिये।
पच्छ दू संधि, संध्या सँधी हैं मनो, लच्छिये स्वच्छ प्रत्यच्छ ही मोहिये॥१५॥

सीता

वा सों मृग-अंक कहैं, तो सों मृगनैनी सबै,

वह सुधाधर, तुहूँ सुधाधर मानियै।

वह द्विजराज, तेरे द्विजराजि राजैं,

वह कलानिधि तुहूँ कला कलित बखानियै॥

रत्नाकर के हैं दोऊ, केसव, प्रकासकर,

अंबर-बिलास कुवलय-हितु मानियै।

वा के अति सीत कर, तुहूँ सीता सीतकर,

चन्द्रमा-सी, चंद्रमुखी, सब जग जानियै॥१६॥

कलित कलंक केतु, केतु-अरि, सेत गात,

भोग-जोग को अजोग, रोग ही को थल सो।

पून्यो ई को पूरन पै, आन दिन ऊनो-ऊनो,

छन-छन छीन होत छीलर के जल सो॥

चन्द सो जो बरनत रामचंद की दोहाई,

सोई मति-मन्द कवि केसव मुसल सो।

सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति,

सीता जू को मुख सखि, केवल कमल सो॥१७॥

एकै कहैं अमल कमल मुख सीता जू को,

एकै कहैं चन्द सम आनंद को कंद री।

होई जो कमल तो रजनि में न सकुचै री,

चन्द जो तो बासर न होत दुति मंद री॥

बासर ही में कमल, रजनि ही में चन्द,

मुख बासर-हू-रजनि बिराजै जगबंद री।

देखे मुख भावै, अनदेखेई कमल-चन्द,

ता तें मुख मुखै, सखी, कमलौ न चन्द री ॥१८॥

पंचवटी वन-वर्णन

सब जाति फटी दुख-की-दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी।

निघटी रुचि मीचु घटी-हूँ-घटी, जग-जीव जतीन की छूटी तटी॥

अघ-ओघ की वेरी कटी विकटी, निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।

चहुं ओरन नाचति मुक्ति-नटी, गुन धूरजटी वन पंचवटी॥१९॥

दंडकवन वर्णन

सोभत दण्डक की रुचि बनी।

भाँतिन-भाँतिन सुन्दर घनी॥

सेव बड़े नृप की जनु प्रसै।

श्रीफल भूरि भाव जहँ बसै॥२०॥

वेर भयानक सी अति लगै।

अर्क-समूह जहाँ जगमगै॥

नैनन को वहु रूपन ग्रसै।

श्री हरि की जनु मूरति लसै॥२१॥

राजति है यह ज्यों ल-कन्या।

धाइ विराजति है सँग धन्या॥

केलियलो जनु श्रीगिरिजा की।

सोभ धरे सित कण्ठ प्रभा की॥२२॥

गोदावरी

विषमय यह गोदावरी अमृतनि के फल देति।
केसव जीवनहार को दुख असेस हरि लेति ॥२३॥

सीताहरण

धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु की शिखा,
कै धूमयोनि मध्य रेखा सुधाधाम की।
चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगरूरे माहिं,
संबर छँड़ाइ लई कामिनी कै काम की॥
पाखंडी की सिद्धि, कै मठेस-बस एकादसी,
लीनी कै स्वपच-राज साखा सुद्ध साम की।
केसव, अदृष्ट साथ जीव जोति जैसी, तैसी,
लंकनाथ-हाथ परी छाया—जाया राम की ॥२४॥

सीता का वस्त्राभूषण फेंकना

सीता के पद-पद्म को नूपुर—पट जनि जातु।
मनो करयो सुग्रीव-घर राजसिरी प्रस्थातु ॥२५॥

राम-विरह

कहि केसव जाचक के अरि चंपक, सोक असोक भये हरि कै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब, ते तीच्छन जानि तजे डरिकै॥
सुनि साधु तुम्हें हम बूझन आये, रहे मन मौन कहा धरिकै?
सिय को कछु सोधु कहौ करुनामय, हे करुना करुना करिकै॥२६॥

मिलि चक्किन चंदन-बात बहै अति मोहन न्यायन ही मति को।
मृगमित्र विलोकत चित्त जरै, लिये चन्द निसाचर-पद्धति को॥

प्रतिकूल सुकादिक होहिं सबै, जिय जानै नहीं इनकी गति को।
दुख देत, तड़ाग, तुम्हें न बनै, कमलाकर ह्वै कमलापति को ॥२७॥

दिन में चन्द्र

चन्द मन्द-दुति वासर देखो,
भूमि हीन भुवपाल विसेखो।
मित्र, देखिये सोभत है यों,
राजसाज विनु सीतहि हों ज्यों ॥३०॥

पतिनी पति-विन दीन अति, पति पतिनी-बिनु मन्द।
चन्द विना ज्यों जामिनी, ज्यों विनु जामिनि चन्द ॥३८॥

वर्षा-वर्णन

देखि राम वरषा रितु आई,
रोम-रोम वहुधा दुख-दाई।
आस-पास तम की छवि छाई,
राति-द्यौस कछु जानि न जाई ॥३०॥

मन्द-मन्द धुनि सों घन गाजैं।
तूर तार जनु आवझ बाजैं ॥
ठौर—ठौर चपला चमकै यों।
इन्द्र-लोक-तिय नाचति हैं ज्यों ॥३१॥

सोहैं घन स्याम घोर घने।
मोहैं तिनमें बक—पाँति मनै ॥
संखावलि पी वहुधा जल स्यों।
मानों तिनको उगिलै बल स्यों ॥३२॥

सोभा अति सक्र—सरासन में।
नाना द्युति दीसत है घन में॥
रत्नावलि सी दिविद्वार मनो।
वर्षागम बाँधिय देव मनो॥३३॥

घन घोर घने दसहूँ दिस छाये।
मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये॥
अपराध बिना छिति के तन ताये।
तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये॥३४॥

अति गाजत बाजत दुंदभि मानो।
निरघात सबै पबिपात बखानो॥
धनु है, यह गौरमदाइन नाहीं।
सरजाल बहै, जलधार वृथाहीं॥३५॥

भट, चातक दादुर मोर न बोलें।
चपला चमकै न, फिरै खँग खोलें॥
द्युतिवंतन को बिपदा बहु कीन्ही।
धरनी कहँ चन्द्रबधू धरि दीन्हीं॥३६॥

तरुनि यह अत्रि रिसीस्वर की सी।
उर में हम चन्द्रप्रभा सम दीसी॥
बरसा न सुनौ, किलकै कल काली।
सब जानत हैं महिमा अहिमाली॥३७॥

भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय जोति तड़ित रलाई है।

दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी को,
नैन अमल कमलदल दलित निकाई है ॥३८॥
केसौदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सु हंसक-सवद सुखदाई है।
अंबर-वलित मति मोहै नीलकंठजू की,
कालिका कि वरखा हरखि हिय आई है ॥३९॥

कलहंस कलानिधि खंजन कंज कछू दिन, केसव, देखि जिये।
गति आनन लोचन पांइन के अनुरूपक से मन मानि लिये ॥
यहि काल कराल ते सोधि सबै हठि कै बरखा-मिस दूरि किये।
अब धौं बिनु प्रान प्रिया रहिहैं, कहि, कौन हितू अवलंबि हिये ॥४०॥

शरद्-वर्णन

बीते बरखा-काल यों आयी सरद सुजाति।
गये अँधेरी होत ज्यों चारु चाँदनी राति ॥४१॥

लक्ष्मन, दासी वृद्ध सी आयी सरद सुजाति।
मनहुँ जगावन को हमहिं बीते बरखा-राति ॥४२॥

राम का लंका-प्रयाण

कहै केसौदास, तुम सुनो राजा रामचन्द्र,
रावरी जबहि सैन उचकि चलति है।
पूरति है भूरि धूरि रोदसी के आस-पास,
दिसि-दिसि बरखा ज्यों बलनि बलति है॥

पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज,
गजराज मृग मृगराज राजिनि दलति है।
जहाँ-जहाँ ऊपर पतोल-पथ आइ जात,
पुरइन को सो पात पुहुमी हलति है॥४३॥

भार को उतारिबे को अवतरे रामचन्द्र,
किधौं, केसौदास, भूमि भारत प्रबल दल।
टूटत हैं तरुवर, गिरे गन गिरिवर,
सूखे सब सरवर-सरित सकल जल॥
उचकि चलत कपि, दचकनि दचकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल-थल।
लचकि-लचकि जात सेस के असेस फन,
भागि गई भोगवती अतल-वितल तल॥४४॥

सेतु-बंधन

उछलै जल उच्च अकास चढ़ै।
जल जोर दिसा-विदिसान दमै॥
जनु सिंधु अकास नदी अरिकै।
बहु भाँति मनावत पाँ परिकै॥४५॥

बहु व्योम बिमान ते भींजि गये।
जल-जोर भये अँगराग रये॥
सुर सागर मानहु जुद्ध जये।
सिगरे पट-भूखन लूटि लये॥४६॥

अति उच्छलि छिछि त्रिकूट छयो।
पुर रावन के जल जोर-भयो॥

तब लंक हनूमत लाइ दई।
नल मानहु आइ बुझाई लई ॥४७॥

लगि सेतु जहाँ तहँ सोभ गहे।
सरितान के फेर प्रवाह बहे ॥
पति देवनदी रति देखि भली।
पितु के घर को जनु रूसि चली ॥४८॥

राजनीति

कह्यौ सुक्राचार्य सु हौं कहौं जू।
सदा तुम्हारो हित संग्रहौं जू ॥
नृपाल भू में विधि चारि जानौ।
सुनौ महाराज, सबै बखानौं ॥४९॥

यहै लोक एकै सदा साधि जानै।
बली वेनु ज्यों आप हीं ईस मानै ॥
करै साधना एक पर्लोक ही कों।
हरिश्चन्द्र जैसे गये दै मही को ॥५०॥

दुहूँ लोक को एक साधै सयाने।
विदेहीन ज्यों वेद-बानी बखाने ॥
नहै लोक दोऊ हठी एक ऐसे।
त्रिसंकै हंसे ज्यों भलेऊ अनैसे ॥५१॥

मन्त्री

चार भाँति मन्त्री कहे, चारि भाँति के मन्त्र।
मोहि सुनायो सुक्र जू, सोधि-सोधि सब तन्त्र ॥५२॥

एक राज के काज हतै निज कारज काजे।
जैसे सुरथ निकारि सबै मन्त्री सुख साजे॥
एक राज के काज आपने काज विगारत।
जैसे लोचन-हानि सही कवि बलिहि निवारत॥
इक प्रभु समेत अपनो भलो करत दासरथि-दूत ज्यों।
इक अपनो अरु प्रभु को बुरो करत रावरो पूत ज्यों॥५३॥

मन्त्र जु चारि प्रकार के, मंत्रिन के जे प्रमान।
बिस से, दाड़िम-बीज से, गुड़ से, नींब समान॥५४॥

मेघनाद-मरण पर रावण-विलाप

आजु आदित्य जल, पवन पावक प्रबल,
चन्द आनंद-मय, त्रास जग को हरौ।
गान किन्नर करौ, नृत्य गंधर्व कुल,
जच्छ बिधि लच्छ उर जच्छकर्दम धरौ॥
ब्रह्म रुद्रादि दै देव तिहुँ लोक के,
राज को जाय अभिषेक इन्द्रहि करौ।
आजु सिय राम दै, लंक कुलदूखनहि,
जय को जाय सर्वत्र बिग्रहु बरौ॥५५॥

मकराक्ष का-युद्ध

कोदण्ड हाथ, रघुनाथ, संभारि लीजै।
भागे सबै समर जूथप, दृष्टि दीजै॥
बेटा बलिष्ठ खर को मकराक्ष आयो।
संहारकाल जनु काल कराल धायो॥५६॥

सुग्रीव अंगद बली हनुमन्त रोक्यो।
रोक्यो रह्यो न रघुबीर जहीं बिलोक्यो॥
मार्यो विभीखन गदा उर जोर ठेली।
काली समान भुज लच्मन कंठ मेली॥ ५७॥

गाढ़े गहे प्रवल अँगनि अंगभारे।
काटे कटै न, बहु भाँतन काटि हारे॥
ब्रह्मा दियो वरहि. अस्त्र न सस्त्र लागै।
लै ही चल्यो समर सिंहहि जोर जागै॥ ५८॥

मायांधकार दिवि भूतल लीलि लीन्हों।
ग्रस्तास्त मानहुँ ससी कहँ राहु कीन्हों॥
हाहादि सब्द सब लोग जहीं पुकारे।
बाढ़े असेस अँग राच्छस के बिदारे॥५६॥

श्रीरामचंद्र पग लागत चित्त हर्से।
देवाधिदेव मिलि सिद्धन पुष्प वर्से॥
मार्यो बलिष्ठ मकराच्छ सुबीर भारी।
जाके हते रवत रावन गर्व भारी॥ ६०॥

रावण-वध

भुव भारहि संजुत राकस को गन जाय. रसातल में अनुराग्यो।
जग में जय सब्द समेतहि केसव राज बिभीखन के सिर जाग्यो॥
मयदानव-नंदिनिके सुख सों मिलिके सियके हियको दुख भाग्यो।
सुर-दुंदुभि-सीसगजा, सर रामको रावण के सिर साथहि लाग्यो॥६१॥

मन्दोदरी-विलाप

जीति लिये दिगपाल, सची को उसासन देवनदी सब सूको।
वासरहू निसिदेवन को नरदेवन की रहै संपति हूको॥
तीनहु लोकन की तरुनीन को बारी वँधी हुतो दण्डहि दू को।
सेवित स्वान सियार सो रावन सोवत सेज परे अब भूको॥६२॥

राम-राज्य

होमधूम मलिनाई जहां,
अति चंचल चलदल है तहाँ।
वाल नास है चूड़ाकर्म,
तीच्छनता आयुध को धर्म॥६३॥

लेत जनेऊ भिच्छा-दानु।
कुटिल चाल सरितानि बखानु।
व्याकरणौ द्विज-वृत्तिन हरै।
कोकिल-कुल पुत्रन परिहरै॥६४॥

कविकुल ही के श्रीफलन उर अभिलाख समाज।
तिथि ही को छय होत है रामचन्द्र के राज॥६५॥

लूटिवे के नाते पाप-पट्टनै तो लूटियत,
तोरिवे को मोहतरु तोरि डारियतु है।
घालिवे के नाते गर्व घालियतु देवन के,
जारिवे के नाते अघ-ओघ जारियतु है।
बाँधिवे के नाते ताल बाँधियत केसौदास,
मारिवे के नाते तो दरिद्र मारियतु है।

राजा रामचन्द्रजू के नाम जग जीतियतु,
हारिवे के नाते आन जन्म हारियतु है ॥६६॥

सबके कलपद्रुम के बन हैं सबके वर वारन गाजत हैं।
सबके घर सोभित देवसभा सब के जय-दुंदुभि बाजत हैं॥
निधि-सिद्ध विशेस असेसन सों सब लोग सबै सुख साजत हैं।
कहि केसव श्रीरघुराज के राज सबै सुरराज से राजत हैं ॥६७॥

(२) कविप्रिया*

गणेश-वन्दना

गजमुख सनमुख होत ही विघन विमुख ह्वै जात।
ज्यों पग धरत प्रयाग-मग पाप-पहार बिलात ॥१॥

वाणी-वन्दना

बानीजू के बरन जुग सुबरन—कन—परमान।
सुकवि-सुमुख-कुरुखेत परि होत सुमेरु समान ॥२॥

शिव-वन्दना

सांप को कंकन, माल कपाल, जटान को जूट रह्यो जटि आंतैं।
खाल पुरानी, पुरानोइ बैल सु, और-की-और कहैं बिख-मातैं ॥
पारबती-पति संपति देखि कहै यह केसव संभ्रम ता तैं।
आपुन माँगत भीख, भिखारिन देत दई ! मुँहमांगी कहां तैं ॥३॥

प्रिय-प्रवास

जो हौं कहौं रहियै तो प्रभुता प्रकट होति,
चलन कहौं तो हित-हानि नहीं सहनो।
भावै सो करहु तो उदास भाव, प्राननाथ,
साथ लै चलहु, कैसे लोक-लाज बहनो ॥

---

* रसिकप्रिया, रामचंद्रिका और विज्ञानगीता के अनेक छंद कविप्रिया में भी उद्धृत हैं।

केसौराइ की सौं, तुम सुनहु छयंले लाल,
चले ही वनत जो पै नाहीं, राज, रहनो।
तैसियै सिखावो सीख तुम हो, सुजान पिय,
तुमहिं चलत मोहि जैसो कछू कहनो ॥४॥

बारह-मासा

फूलीं लतिका ललित तरुन-तन फूले तरुवर।
फूलीं सरिता सुभग, सरस फूले सब सरवर॥
फूलीं कामिनि, कामरूप करि कंतनि पूजहिं।
सुक सारो-कुल हँसै, फूलि कोकिल कल कूजहिं॥
कहि केसव,ऐसी फूल महँ फूलहिं शूल न लाइये।
पिय आपु चलन की का चली, चित्त न चैत चलाइये॥५॥

केसवदास, अकास-अवनि वासित सुवास करि।
बहत पवन गति मंद गात मकरंद-बुन्द धरि॥
दिसि-बिदिसनि छबि लागि, भाग पूरित पराग वर।
होत गंध ही अंध बौर भौंरा बिदेशि नर॥
सुनि सुखद-सुखद सीख सीख पति रति सिखई सुख साख में।
बर-विरहिन बधत बिसेख करि, काम विसिख वैसाख में॥६॥

एक-भूत-मय होत भूत तजि पंचभूत भ्रम।
अनिल,अंबु,आकास,अवनि ह्वै जात आगि सम॥
पथ-थकित मद-मुकित सुखित सर सिंधुर जोवत।
काकोदर करि कोख उदर तर केहरि सोवत॥
प्रिय, प्रबल जीव यहि विधि अवल सकल विकल जलथल रहत।
तजि, केसवदास, उदास मति, जेठ मास जेठे कहत॥७॥

पवन-चक्र परचंड चलत चहुँ ओर चपल गति।
भवन भामिनी तजत, भँवति मानहु तिन की मति॥
संन्यासी यहि मास होत इक-आसन-वासी।
मनुजन की को कहै, भये पच्छियो निवासी॥
यहि समय सेज सोवन लियो श्रीहि साथ श्रीनाथ हू।
कहि केशवदास, असाढ़ चल मैं न सुन्यो श्रुतिगाथ हू॥८॥

केसव सरिता सकल मिलत सागर मन मोहैं।
ललित लता लपटात तरुन तन, तरुवर सोहैं॥
रुचि चपला मिलि मेघ चमपल चरत चहु ओरन।
मन भावन कहँ भेंटि भूमि कूजत मिस मोरन॥
यहि रीति रमन-रमनी सकल लागे रमन-रमावनै।
पिय, गमन करन की को कहै, गमन सुनिय नहिं सावनै॥९॥

घोरत घन चहुँ ओर, घोस-निर्घोसनि मंडहिं।
धाराधर धरि धरनि मुसलधारनि जल छंडहिं॥
झिल्लीगन झंकार, पवन झुकि-झुकि झकझोरत।
बाघ सिंह गुंजरत, पुञ्ज कुञ्जर तरु तोरत॥
निसिदिन बिसेस निःसेस मिटि जात, सु ओली ओढ़िये।
निजदेस पियूख बिदेस विख, भादौं भवन न छोड़िये॥१०॥

प्रथम पिंड हित प्रगट पितर पावन घर आवैं।
नव दुर्गा नर पूजि स्वर्ग-अपवर्गहु पावैं॥
छत्रनि दै छितिपतिहु लेत भुव लै सँग पंडित।
केसवदास, अकास अमल, जल जलजनि मंडित॥

रमनीय रजनि रजनीस रुचि, रमारमनहू रास रति।
फल केलि कलपतरु क्वांर महँ, कत न करहु विदेस मति ॥११॥

बन, उपवन, जल, थल, अकास दीसंत दीप गन।
सुख ही सुख दिनरात जुवा खेलत दम्पति जन ॥
देव-चरित्र-विचित्र-चित्र चित्रित आंगन-घर।
जगत जगत जगदीस-जोति, जगमगत नारि नर ॥
दिन दान न्हान गुनगान हरि जनम सुफल करि लीजियै।
कहि केसवदास, विदेस मति, कंत न कातिक कीजियै ॥१२॥

मासन में हरि-अंस कहत यासों सब कोऊ।
स्वारथ-परमारथ हु देत भारथ-महि दोऊ ॥
केसव सरिता-सरनि कूल फूले सुगन्ध गुर।
कूजत कुल कलहंस, कलित कलहंसनि को सुर ॥
दिन परम नरम, सीत न गरम, करम-करम यह पाय रितु।
करि, प्राननाथ, परदेस कहँ मारगसिर मारग न चितु ॥१३॥

सीतल जल-थल, बसन-असन सीतल अनरोचक।
केसवदास, अकास-अवनि, सीतल असु-मोचक ॥
तेल, तूल, तामोर, तपन, तापन, नव नारी।
राज-रंक सब छोरि करत इन्हीं अधिकारी ॥
लघु दिवस, दीह रजनीन सुनि होत दुसह दुख रूप में।
यह मन-क्रम-वचन बिचारि, पिय, पंथ न बूझिय पूस में ॥१४॥

बन, उपवन, केकी, कपोत, कोकिल कल बोलत।
केसव भूले भँवर भरे बहु भावन डोलत ॥

मृगमद मलय, कपूर धूर, धूसरित दसौ दिसि।
ताल, मृदङ्ग, उपंग सुन्त संगीत गीत निसि॥
खेलत वसत संतत सुघर सत्-असत अनंत गति।
घर, नाह, न छाँड़िय माह में, जो मन मांहि सनेह मति॥१५॥

लोक-लाज तजि राज-रंक निरसंक बिराजत।
जोइ भावत सोइ कहत, करत पुनि हास, न लाजत॥
घर-घर जुवती जुवन जोर गहि गांठिन जोरहिं।
बसनछ्रिनि, मुख मांजि, आंजि लोचन, तिन तोरहिं॥

पटवास-सुवास अकास उड़ि भुव-मंडल सब मंडियै।
कह केसवदास, बिलास-निधि फागुन फागु न छंडियै॥१६॥

अन्योक्ति

आपु धरै मल, औरनि केसव निर्मल-काय करै चहुँ ओरै।
पथिन के परिताप हरै हठि जे तरु-तूल-तनोरुह तोरैं॥
देखहु एक सुभाव बड़ो बड़भाग तड़ागन को चित चोरै।
ज्यावत जीवन हारिन को निज बन्धन के जग-बन्धन छोरै॥१७॥

अन्योक्ति

दल देख्यो नहीं, बस आड़ो बड़ो, अरु घाम घनो, ज्वल क्यों हरिहै।
कहि केसव, बाहु बढ़े दिन, दाव दहै घर, धीरज क्यों धरिहै॥
फलिहै फुलिहै नहीं तो लौं, तुही कहि तो पहँ भूख सही परिहै।
कछु छाँह नहीं, सुख-सोम नहीं, रहि, कीर, करीर कहा करिहै?॥१८॥

नरक

वाहन कुचाल, चोर चाकर, चपल चित,
मीत मतिहीन, सूम स्वामी, उर आनिये।
पर-घर भोजन, निवास-वास कु-पुरन,
केसौदास, वरखा-प्रवास दुखदानियें ॥
पापिन को अंग-संग, अंगना अनंग-बस,
अपजस-जुत सुत, चित हित हानियें ॥
मूढ़ता बुढ़ाई व्याधि दारिद झुठाई आधि,
यहई नरक नर-लोकन बखानिये ॥१६॥

मुक्ति

पण्डित पूत सपूत सुधी, पतनी,
प्रति—प्रेम—पराइन भारी।
जानै सबै, गुन मानैं सबै,
जग दान-विधान दया उर धारी ॥
केसव, रोगन हीं सों विजोग,
संजोग-सुभोगन सों सुखकारी।
साँच कहैं, जग मांहि लहै जस,
मुक्ति यहै चहुँ वेद बिचारी ॥२०॥

नारी-प्रशंसा

माता जिमि पोखत, पिता ज्यों प्रतिपाल करै,
प्रभु जिमि सासन करति हेरि हिय सों।
भैया ज्यों सहाय करै, देति है सखा ज्यों सुख,
गुरु ज्यों सिखावै सिख, हेत जोरि जिय सों ॥

दासी ज्यों टहल करै, देवी ज्यों प्रसन्न है,
सुधारै परलोक, ना तो नाहि काहू त्रिय सों ॥
छाके हैं अयान-मद छिति के छनक छुद्र,
औरनि सों नेह करें छांड़ि ऐसी तिय सों ॥ २१ ॥

संसार

जीउ दियो अरु जनम दियो जग, जाहि की जोति बड़ी जग जानै ।
ताही सों बैर मनो बच-काय करै, कृत केसव को उर आनै ॥
मसक तें रिषि सिंघ करयो, फिरि ताही सों मूरख रोस बितानै ।
ऐसो कछू यह काल है, जाको भलो करियै सो बुरो करि मानै ॥२२॥

प्रारब्ध

बालि विंध्यो, बलिराव बँध्यो, कर सूली के सूल कपाल थली है ।
काम जरयो जग, काल परयो बँदि, सेस धरयो बिख हालाहली है ॥
सिंधु मथ्यो, कलि काली बँध्यो, कहि केसव, इन्द्र कुचाल चली है ।
रामहू की हरी रावण बाम, चहूँ जुग एक अदृष्ट बली है ॥२३॥

विधि-विधान

कर्न कृपा द्विज-द्रोन तहां, जिन को कृत काहु पै जात न टारो ।
भीम गदाहि धरे, धनु अर्जुन, जुद्ध जुरे जिन सों जम हारो ॥
केसवदास, पितामह भीसम मीचु करी बस लै दिसि चारो ।
देखत ही तिन के दुरजोधन द्रौपदि सामुहे हाथ पसारो ॥२४॥

वेई हैं बान विधान-निधान अनेक चमू जिन जोर हयी जू ।
वेई हैं बाहु,पई धनु धीर जु, दीह दिसा जिन जुद्ध जयी जू ॥
वेई हैं अर्जुन,भीम नहीं; जग में जस को जिन बेलि बयी जू ।
देखत ही तिनके तब का बनि नारेहिं नारि छिड़ाइ लई जू ॥२५॥

श्रीराम-प्रशंसा

पूत भयो दसरत्थ को, केसव, देवन के घर वाजी वधाई।
फूलि कै फूलन को वरसै, तरु फूलि फले सबही सुखदाई॥
छीर वही सरिता, सब भूतल धीर समीर सुगन्ध सुहाई।
सर्वसु लोग लुटावत देखि कै, दारिद देह दरार सीखाई॥२६॥

बीरबल प्रशंसा

केसवदास के भाल लिख्यो विधि रंक को अंक, बनाइ संवारयो।
धोयो धुपै नहीं छूटो छुटै, वहु तीरथ जाइ कै नीर पखारयो॥
ह्वै गयो रंक ते राव तबै, जब बीरबली नृपनाथ निहारयो।
भूलि गयो जग की रचना, चतुरानन बाइ रह्यो मुख चारयों॥२७॥

पावक पंछी-पसू नर-नाग नदी-नद लोक रचे दस-चारी।
केसव, देव-अदेव रचे, नरदेव रचे, रचना न निवारी॥
कै बर बीर बली बरवीर भयो कृतकृत्य महाव्रत-धारी।
दै करता पन आपन ताहि, दयी करतार दुवौ कर तारी॥२८॥

इन्द्रजीत-प्रशंसा

मेघ ज्यौं गँभीर बानी, सुनत सखा सिखीन
सुख, अरि उरन जवासे ज्यौं जरत है।
जा के भुजदंड भुवलोक कौं अभय-धुज,
देखि-देखि दुजन भुजंग ज्यौं डरत है॥
तोरिबे कौं गढ़-तरु होत हैं सिला-सरूप,
राखिबे को द्वारन किवार ज्यौं अरत है।
भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग-जुग,
केसौदास जा के राज राज सो करत है॥२९

ओड़छा-वर्णन

चहूँ भाग बाग वन, मानहु सघन घन,
सोभा की सी साला, हंस-माला सी सरित-बर।
ऊँचे ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची जनु,
कौसिक की कीन्हीं गंगा खेलत तरल-तर॥
आपने सुखनि आगे निंदत नरिंद, और
घर-घर देखियत देवता से नारि-नर
केसौदास, त्रास जहाँ केवल अदृष्ट ही को,
वारियें नगर और ओरछा नगर पर ॥३०॥

(३) रसिकप्रिया

श्रीकृष्ण

चपला पट, मोर-किरीट लसै मघवा-धनु, सोभ बढ़ावत हैं।
मृदु गावत आवत वेनु वजावत, मित्र-मयूर नचावत हैं॥
उठि देखि भट्ट भरि लोचन, चातक चित्त की ताप बुझावत हैं।
घनस्याम घने घन-वेख धरे जु बने वन तें ब्रज आवत हैं॥१॥

सो दिवाइ-दिवाइ सखी इक वारक कानन आनि वसाये।
जाने को, केसव, कानन तें कित ह्वै हरि नैननि माँझ सिधाये॥
लाज के साज धरे ही रहे,, तव नैनन लै मन ही सों मिलाये।
कैसी करौं अब क्यों निकसे री, हरे-ई-हरे हिय में हरि आये॥ २॥

वियोग

हरित-हरित हार हेरत हियो हरत,
हारौं हौं हरिन-नैनी, हरि न कहूँ लहौं।
वनम-माली ब्रज पर बरखत बन-माली,
वनमाली दूर, दुख, केसव कैसे सहौं?।
हृदय-कमल नैन देखि कै कमल-नैन,
होऊँगी कमल-नैनि, और हौं कहा कहौं?।
आम-घने घनस्याम घन ही से होत, घन,
स्यामनिके द्यौस घनश्याम बिन क्यों रहौं॥ ३।

घोर घने घन घोरत सज्जल, उज्जल कज्जल की रुचि राँचे।
फूले फिरैं इभ से नभ पाइ कै सावन की पहिली तिथि पाँचे॥

चौहुं दिसा तड़िता तरपै, डरपै बनिता, कहि केसव साँचैं।
जानि मनो ब्रजराज बिना ब्रज ऊपर काल-कदुम्बिनी नाँचैं ॥ ४ ॥

चन्द्रोपालंभ

चंद नहीं बिस-कंद है, केसव, राहु यही गुन लीलि न लीनो।
कुंभज पावन जानि अपावन धोखे पियो, पचि जान न दीनो ॥
या सों सुधाधर, सेस त्रिसाधर नाम धरो, बिधि है बिधि हीनो।
सूर सों, माई, कहा कहियै जिन पापु लै आपु बराबर कीनो ॥ ५ ॥

निद्रा

आये ते आवैगी, आँखिन आगे ही, डोलिहै, मानहुं मोल लयी है।
सोवै न सोवन देय न यों तब सो इनमें उन साथ दयी है ॥
मेरियै भूल, कहा कहौं, केसव, सौति कहूँ ते सहेली भयी है।
स्वारथ ही हितू है सब के, परदेस गये हरि नींद गयी है ॥ ६ ॥

अन्योक्ति

जात नहीं कदली की गलीन, भली बिधि हो बदली मुख लावै।
चाहै न चंप-कली की थली, मलिनी नलिनी की दिसान घिघावै ॥
जो कोउ, केसव, नाग लवंग-लता, लवली-अवलीन चरावै।
खारक-दाख खवाइ मरौ किन, ऊँटहि ऊँटकटारहि भावै ॥ ७ ॥

गोपी-विनोद

सखि, बात सुनो इक मोहन की, निकसी मटुकी सिर रीती लकै।
पुन बाँधि लयी सु नये नतना रु कहूँ-कहूँ बुंद करीं छल कै ॥

निकसी उहि गैल हुते जहँ मोहन, लीनी उतारि जबै चल कै।
पतुकी धरि स्याम खिसाइ रहे, उत ग्वारि हँसी मुख आँचल कै ॥८॥

कृष्ण-गोपी-विवाद

दै दधि, दीन्हो उधार हौ ? केसव, दानि कहा जब मोल लै खैहैं ?।
दीने बिना तो गयी हो गयो, न गयी न गयी, घर ही फिरि जैहैं ॥
गो हितु ? बैरु कियो ? अब हो हितु ? बैरु किये बरु नीकी ही रैहैं।
बैरु कै गोरस बेचहुगी, अहो ? बेच्यो न बेच्यो तो ढारि न दैहैं ॥९॥

(४) विज्ञान गीता

(१)

भागीरथी जहँ ऐसि है केसव, साधुन के जहँ पुञ्ज लसै रे।
सन्तत एक विवेक सों, वेद-विचारन सों, जहँ जीव कसै रे॥
तारक मन्त्र के दाइक लाइक आपु जहाँ जगदीस बसै रे।
साधन सुद्ध समाधि जहाँ, तहँ कैसे प्रबोध-उदोत नसै रे॥

(२)

अंध ज्यों अंधनि साथ निरंध कुवाँ परिहू न हिये पछितानो।
बंधु के मानत बंधनहारनि दीने विषै-विष खात मिठानो॥
केसव आपने दासनि को फिरि दास भयो भव, जद्यपि रानो।
भूलि गई प्रभुता, लस्यो जीवहि बंदि परे भलो बंदियखानो॥

(३)

केसव क्यों हूँ भरयो न परै, अरु जोर भरे भय की अधिकाई।
रीतत तौ रितयो सु घरीकहुं, रीति गये अति आरतताई॥
रीतो भलो न भरो कैसेहुं, रीते भरे बिनु कैसे रहाई।
पाइयें क्यों परमेस्वर की गति, पेटहु की गति जानि न जाई॥

(४)

पेटनि-पेटनि ही भटक्यो बहु, पेटनि की पदवी न नक्यो जू।
पेट तें पेट लियो निकस्यो, फिरिकै पुनि पेट ही सों अटक्यो जू॥

पेटको चेरो सबै जग, काहू के पेट न पेट समात तक्यो जू।
पेट के पंथ न पावहु, केसव, पेटहि पोखत पेट पक्यो जू॥

(५)

ठाढ़े हिं खेयतु, बैठेहिं खेयतु, खात परेहूँ महासुख पायो।
खातहिं खात सबै मरि जात, सु खैबोई-पीबो मनै पुनि भायो॥
आवत-जात निरे-दिवि, केसव, कौन-हि-कौन कहा नहिं खायो।
खैबो तऊ न उबीठतु है जग, श्रीजगदीश बुरे ढँग लायो॥

(६)

दान दया-सुभसील सखा बिझुकै, गुन भिच्छुक को बिझुकावैं।
साधु-सुधी सुरमी सब, केसव, भाजि गयीं, भ्रम भूरि भजावैं॥
सज्जन-संग बछेरु डर, बिडरैं वृखभादि, प्रवेस न पावैं।
बार बड़े अघ-बाघ बँधे, उर-मन्दिर बाल-गोपाल न जावैं॥

(७)

खैंचत लोभ दसो दिसि को, गहि मोह महा इत पासिक डारे।
ऊँचे तें गर्व गिरावत, क्रोध सों जीवहि लूहर लावत भारे॥
ऐसे में कोढ़ की खाज ज्यों, केसव, मारत काम के बान निनारे।
मारत पाँच करे पंचकूटहि, का सों कहैं जग-जीव बिचारे॥

(८)

भूलत हैं कुल-धर्म सबै तब हीं, जब हीं बर आनि ग्रसै जू।
केसव, बेद-पुरानन को न सुनै-समुझै, न ग्रसै न हँसै जू॥

देवन तें नरदेवन तें नर तें वर बानर ज्यों बिलसै जू।
जंत्र न मन्त्र न मूरि गिनै, जग जीवन काम-पिसाच ग्रसै जू॥

(९)

ग्यानिन के तनत्रानन को, कहि, फूल के बानन बेधत को तो।
बाइ लगाइ विवेकन को बहु साधक को, कहि, बाधक हो तो॥
और को केसव लूटतो जन्म अनेकन के तपसान को पोतो।
तौ सम-लोक सबै जग जातो, जो काम बड़ो बटपार न होतो॥

(१०)

दान-सयानन के कलपद्रुम टूटत, ज्यों रिन ईस के माँगे।
सूखत सागर से सुख, केसव, ज्यों दुख श्रीहरि के अनुरागे॥
पुन्य बिलात पहारन से पल, ज्यों अघ राघव की निधि जागे।
ज्यों द्विज-दोख तें संतति नासति, त्यों गुन भाजत लोभ के आगे॥

(११)

काँपै उर-बानि, डगै बर डीठि, तुचा ति कुचै, सकुचै मति-बेली।
नवै नव ग्रीव, थकै गति केसव, बालक तें सँग-ही-सँग खेली॥
लिये सब आधिन-व्याधिन संग, जरा जब आवे जुरा की सहेली।
भगै सब देह-दसा जिय साथ, रहै दुरि दौरि दुरासा अकेली॥

(१२)

दिन-ही-दिन बाढ़त जाइ हिये,
जरि जाइ समूल, सो औखदि खै है ?।
किधौं याहि के साथ अनाथ ज्यों केसव,

आवत-जात सदा दुख सैहै ? ॥
जग जाकी तू जोति जगै, जड़ जीव रे,
कैसेहुँ ता पहँ जाइ न पैहै ।
सुनि, बाल-दसा गयी, ज्वानी गयी ॥
जरि जैहै जरा ऊ, दुरासा न जैहै ।

(१३)

अखिल आछत आँधरो जीव करै बहु भाँति ।
धीरन्ह धीरज बिन करै तिसना किसना राति ॥

(१४)

कौन गनै यही लोक तरीन, बिलोकि-बिलोकि जहाजन बोरै ।
लाज बिसाल लता लपटी तन धीरज-सत्य तमालन तोरै ॥
बंचकता अपमान अयान अलाभ भुजंग भयानक किस्ना ।
पाट बड़ो, कहुँ घाट न, केसव, क्यों तरि जाइ तरंगिनि त्रिस्ना ॥

(१५)

पैरत पाप पयोनिधि में नर मूढ़ मनोज-जहाज चढ़ोई ।
खेलतऊ न तजै जड़ जीव, जऊ बड़वानल-कोध डढ़ोई ॥
झूठ तरंगिनि में उरझै सु, इतै पर लोभ प्रवाह बढ़ोई ।
बूड़त है तेहि तें उबरै, कहि केसव, काहे न पाठ पढ़ोई ॥

(१६)

फूलत हौ मुख देखि, न भूलहु, लाभ यहै भली बात सिखावौ ।
जौ चलकै अपमारग को मनु, तौ दुख दै सतमारग लावौ ॥

नृदन साथ परे फिर हाथ न आइ है नाथ, न माथ नवावौ।
नाकुल को अवलोकि के, केसव, व्यालिन ज्यों मनको न पठावौ॥

(१७)

हृदय-वृच्छ सों बासना, लता न लपटति जाहि।
राग-द्वेष फल ना फलै, मृत्यु न मारे ताहि॥

(१८)

जग को कारन एक मन, मन कों जीत अजीत।
मन को मन सुनि सत्रु है, मन ही को मन मीत॥

(१९)

निसि-बासर वस्तु बिचार करै, मुख साँच हियो करुना-धनु है।
अघ निग्रह, संग्रह धर्म-कथानि, परिग्रह साधुन को गनु है॥
कहि केसव, जोग जगै हिय भीतर, बाहर भोगनि सों तनु है।
मनु हाथ सदा जिनके, तिनके बन ही घर है, घर ही बनु है॥

टिप्पणियाँ

मंगलाचरण

१ बालक—बालक हाथी। मृणालनि—कमल की नालों को। अकाल—अकाल में उत्पन्न। दीह—दीर्घ, बड़े। हठि—हठ-पूर्वक। पद्मिनी के पात सम—जिस प्रकार बालक हाथी कमलिनी के पत्तों को सहज ही उखाड़ डालता है। कलुष—पाप, जिस प्रकार छोटा हाथी कीचड़ को ठेल देता है उसी प्रकार जो पापों को ठेल कर पाताल पहुँचा देते हैं। कै—कर के। कलंक-अंक—कलंक का चिह्न। भव-सीस-सम—महादेव के सिर पर स्थित चन्द्रमा के समान (महादेव के सिर पर द्वितीया का चन्द्रमा रहता है जो निष्कलंक होता है।) दास के बपुख को—भक्त के शरीर को। सांकरे की—संकट में पड़े हुए की। सांकरनि—संकट की जंजीरें। सनमुख होत—शरण में आते ही। दसमुख - मुख इ०—(१) दशों दिशाओं के लोगों के मुख, गणेश जी के मुख को जोहते हैं। (२) दशमुख वाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश के मुख गणेशजी का मुख जोहते हैं।

२ उदारता—महिमा। उदार—महान। तपवृद्ध—तप में बड़े, बड़े तपस्वी। केहूँ-किसी ने। केहूँ-कहीं पर, या किसी प्रकार। काहू पै-किसी से। पति—ब्रह्मा। पूत—महादेव, जो ब्रह्मा के पुत्र हैं। नाती—कार्त्तिकेय।

३. पूरन इ०—संपूर्ण पुराण और पुराने लोग। उक्ति-बात। दरसन—दर्शन शास्त्र भी जिन्हें नहीं समझ पाते वे। देहि—देता है।

(१) रावण-बाण-संवाद

१-५ सबनि—सब ने। सब ही को—सब राजाओं को। दैयत—दैत्य। दै—मुझे दे।

६. साजु—इकट्ठा करो, लगाओ। सुरराज—महादेव।

७. कानीन—कुमारी से उत्पन्न (गाली) नीच।

८. कोरि—कोटि, करोड़ों अखर्व।

९. पर्वतारि—इन्द्र। सुपर्व—देवता। अंगना—स्त्री। जलेस—वरुण। चंदनसो इ०—चंद्र ने भयभीत होकर चांदनी रूप चंदन से जिस की पूजा की। दंडक में—घड़ी भर में। काल-दण्ड—यम का आयुध। मानो०—मानो (यम के) काल ने काल (यम) के खण्ड खण्ड कर दिये। बिसदंड—कमल-नाल (सा कोमल) विडंबना—उपहास।

११. असार—सार-हीन। विवान कार्य।

१२. पिता—बलिराजा। प्रनासी—नाशक। छत्र—छत्ता। उसांसी—सांस लेने का अवसर, आराम।

१३. संजुते—युक्त।

१४. ओक—स्थान। जानु—जान ले। रस—आनन्द।

१५. मंडन—भूषित करना, लगाना। पंडित—चतुर (विष्णु का हाथ) करतारहु को करतार—ब्रह्मा का कर्ता अर्थात् विष्णु।

१६. बाद—विवाद। कदन—नाशक।

१८. करसि हैं—चढ़ावेंगे।

१९. करतारी—करतार की। गारी—लक्ष्मी का अवतार होने के कारण बाण सीता को पूज्या मानता है। राज करै-अर्थात् मुझे नहीं चाहिये।

२०. जुरे—जुड़ने पर।

२१. आसन-बासन—आसन छोड़ और वस्त्र उतार। धनुष उठाने को तय्यार हो। मद-नासन—गर्व तोड़ने वाले को। सासन—आज्ञा (जनक की)। पूजत—पूरा हो। पूजे—पूरा किये।

२२. हैहय-राज—सहस्रार्जुन जिसने रावण को बाँध लिया था।

२३. नाल—कमल-नाल। सर्वमंगला—पार्वती। सर्व—महादेव।

आयुध—धनुष जैसे महादेव के अनेक आयुध।

२४. रारि—झगड़ा।

२५. पीसजहु—पिस जाओगे।

२६. निराकुल—किंकर्त्तव्यविमूढ़। केहूँ—कैसे भी विभूति—ऐश्वर्य।

२८. गुरु—अर्थात् महादेव। असमंजस—दुविधा।

३०. सर—बाण से। आसर—असुर।

३१. अनंग—विदेह।

(१) लंका में हनुमान

१. गिरि-गज-गंड—पहाड़ रूपी हाथी के कपोल पर से। कलंक-रंक-कों—कलंक रहित (सीता के पदपंकज) की ओर। हवाई—आसमानी, अग्निबाण। कमान—तोप।

२. नाकपति-सत्रु—मैनाक पर्वत। अंतरिच्छहीं—आकाश से ही देख कर अपने शुद्ध चरण से उसे जरा छू दिया।

४. दंस-दसा—मच्छर का रूप। वनराजि-विलासी—वनों में विहार करने वाला (बंदर)।

५. कौन इ०—किसके भेजे हुए हो।

७. घर ही०—वापिस ही लौटना होगा।

८. रस भीनी—रसों से भरी।

९. हरि—वानर।

११. आवझ—एक बाजा।

१३. किन्नरी-(१) किन्नर स्त्री (२) वीणा। नगी-कन्यका—पहाड़ी बालाएँ

१४. हाला—मदिरा। कोक की कारिका—कोकशास्त्र के सूत्र।

१५. सुद्ध-गीता—पवित्र यशवाली।

१६. एक वेनी—केशों की एक वेनी वनाये हुए।

१८. मायान—मायाओं में घिरी हुई। सँवर—एक असुर जो प्रद्युम्न रूप में काम को चुरा लाया था। काम-वामा—रति। राम-रामा—सीता।

२०-२२. वसै इ०—इन तीन पद्यों के दो दो अर्थ हैं, एक अर्थ से राम की निंदा सूचित होती है दूसरी से ईश्वर-राम की स्तुति। देखै न कोऊ—(१) कोई उसे नहीं देखता, कोई उसकी पर्वाह नहीं करता। (२) कोई उसे देख नहीं पाता। महा वावरो—(१) अत्यन्त वावला। (२) विरक्त योगी जो ईश्वर भक्ति में पागल हो। कृतघ्नी—(१) कृतघ्न, (२) कर्मों का नाशक। कुदाता—(१) कृपण, (२) पृथ्वी को देने वाला। कुकन्या—(१) दुष्ट स्त्रियाँ, (२) पृथ्वी की कन्या, सीता। नग्गा-मुण्डी—(१) भिखारी आदि नीच जन, (२) साधु-महात्मा। हितू—मित्र। अनाथ—(१) जिसका कोई रक्षक या पालक नहीं, (२) जिसका कोई स्वामी नहीं। जो सबका स्वामी है। अनाथानुसारी—(१) अनाथ ही जिस के साथ रहते हैं, (२) अनाथ जिसका अनुसरण करते हैं, जो अनाथों का शरण देता है। या जो अनाथों के पीछे फिरता है, उसका सदा ध्यान रहता है—दंडी इ०—(१) दंडित, जटावाले, मुंडित भिखारी आदि नीच जन, (२) तपस्वी। तुम्हें दूखैं—(१) तुम को दोष लगाने वाले, (२) लक्ष्मी को हीन समझने वाले। निर्गुणी—(१) गुणहीन, (२) निर्गुण, गुणों से परे। नृदेवी—रानी। मघोनी—इन्द्राणी, मृडानी—पार्वती। नचै इ०—तुम्हारे आगे।

२४. भासैं शोभित होते हैं। स्यों—सहित।

२५. तनु—छोटी सी, नाकी—उलांघी। विड—विष्ठा, छीवैं—छुए।

२६. विसर्पी—दौड़ने वाले।

२७. युक्ति इ०—उपायों के द्वारा ऊँच नीच समझा कर।

२८. अंग—तेरे अंग में। ठौर—अवसर। सियरी—ठंडी।

३०. संभ्रम—भ्रम या घबराहट। आबाल—बचपन से

३२. नीठ—कठिनता से।

३३. तन—ओर। चाहि—देख। विरूप—रहित।

३५. अज—दशरथ के पिता। नंद—पुत्र।

३८. पूजैं—पहुँचते हैं।

३६. श्री—राजलक्ष्मी (राज्य)। अनीति—राम को छोड़ कर।

४२. कंकन इ०—राम तुम्हारे विरह में इतने कृश होगये हैं कि वे इस मुँदरी को कंगन कहते हैं।

४३. राति-दीह—रात-दिन। जमराज-जनी—मानो यमराज द्वारा उत्पन्न की हुई (यातनायें) अथवा दीह=लंबी, जनी=जनका स्त्रीलिंग, किंकरी। के—या।

४६. द्यौस—दिवस।

४७. सनेह—(१) तेल, (२) प्रेम।

४६. कोरि—करोड़ों। अच्छ—अक्षयकुमार, रावण का एक पुत्र।

५०. दूखन—(१) दूषण नाम का राक्षस (२) नाश करने वाला। गोपद—गाय के पैर से बना खड्डा। छुई—देखी।

५३. बाससी—वस्त्र। रार—राल।

५४. झंझरी—झरोखे की जाली। छुद्र—नीच जन।

५५. अटा—अटारी। नाग=(काला) हाथी।

५८. लोल—चंचल। दैत्य-जाया—असुर स्त्रियाँ।

५६. उच्च रुखी ह्वै—ऊँचे उड़कर। पूर—नाला। गिरा—सरस्वती नदी जिसका रंग सुनहरा है। मनि—चूड़ामनि जो सीता ने हनुमान को दी थी।

६०. बेर—समय। पूरब जाम—पहले पहर में।

२—अंगद-रावण-संवाद

१-३. करहाट—सोना। जीव—वृहस्पति। अनेसे—दुष्ट, शत्रु

७-८. देवदूखण—देवताओं का शत्रु, रावण। चिकारि—खेल ही में, सहज ही। त्रिकूट—जिस पर्वत पर लंका वसी थी। असोकवनीहि—अशोक-वाटिका को। सोक दयो—उजाड़ कर।

६—१२. ईस—राम। लोकेस—दिग्पाल। स्यों—सहित। छितछत्र—पृथ्वी के क्षत्रिय। हैहयराज—सहस्रार्जुन। धनु-रेख—लक्ष्मण द्वारा बनाई हुई। वानर—अर्थात् हनूमान। जराइ-जरी—जड़ने की चीजों से जड़ी हुई।

१३-१४. चपि—दबकर। वादि-व्यर्थ। प्रशस्ति—प्रशंसा। चेटक—इन्द्रजाल। तज्यो—धनुष ने तनिक भी भूमि नहीं छोड़ी, जरा भी नहीं हिला। चिर-चेरिन—बुढ़िया दासियों ने।

१५. हनू—हनुमान। आठहुँ—राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवन्त, नील, सुषेण, हनूमान, विभीषण।

१७. विलगु—बुरा।

१६. सम—जो न शत्रु है न मित्र। नत—नयी। अभिलाख—अभिलाखहू-इच्छा करो।

२१-२३. सिवा-सियार। नरै-विहारी—नरकगामी। छपानाथ—चन्द्रमा। सक्का—भिश्ती, पानी ढोने वाले। सीखी—अग्नि। महा-दण्डधारी—भैरव।

२४. पेट चर्यौ—पेट में आया। पलका—पलंग। सौं—वह परमात्मा। पढ्यो—नाम लिया। रह्यो चढ़ि चित्त—चित्त में चढ़ा है, चित्त में अभिमान से भरा है।

२६—३२. धाघ—जादूगर, इन्द्रजाली। मगर—इन्द्रजाल। रिखि-नार—अहिल्या। द्विजनाते—तुम ब्राह्मण हो इसलिये। अम तुसी ई०—भूमि

को मनुष्यों और बंदरों से रहित। तिन के—परशुराम के। बर—बल। पुरैनि—कमलिनी। धरको—संशय। गुन—काम। बानरराज—सुग्रीव।

१४. प्रस्थान—प्रस्थाना। जब मुहूर्त पर जाना नहीं हो सकता और जाना आवश्यक हो तो सुपारी आदि कुछ चीजें एक कपड़े में बाँध कर मुहूर्त के समय किसी मंदिर में रख आते हैं और फिर सुविधानुसार प्रस्थान करते हैं।

३—रामाश्वमेध

१-७. गाथ—बात, कथा। श्रुति—कान। पट्ट—विजय पट्ट। शत्रुहंता—शत्रुघ्न। सभोग—भोग्य वस्तुओं सहित। भेद—भेद, प्रकार। नरदेव—राजा।

८. सूर—सूर्य। स्रवै—बरसाती है। लाजनि—खीलों को।

९-१०, माई—समाता है। गाथ की—कीर्ति फैलायी। जन—अपने आदमी। तिनकी—उन स्थानों की। मुद्रित इ०—सात समुद्रों से मुद्रित पृथ्वी पर अपनी मोहर छाप दी।

११. अवगाहि कै—मथ कर।

१३ एक वीरा—जिसका पति संसार का सर्व श्रेष्ठ वीर है। एक वीरा इ०—एक वीरा कौशल्या है, उसका पुत्र राम है. उस राम ने यह घोड़ा छोड़ा है, जो बली हो इसे पकड़े।

१५. मोच्यो—जो लगभग छोड़ा ही जा चुका था।

१६. लवणासुर—एक असुर जिसे शत्रुघ्न ने मारा था। द्विज-दोस—ब्राह्मणों के प्रति किये गये अपराध, ब्रह्महत्या आदि।

१८. गात पूजियो—क्योंकि वे फूल की तरह जान पड़े।

१९-२१. तूल-रूई। रिपुहा—शत्रुघ्न। को—के लिये। पत्री—बाण। मोहे—बेहोश हुए।

२४-३१. गीता—कथा। पतिदेवता—पतिव्रता। गाहियो—वश में किया, बाँधा। बर—बल। घो बर—उस सेना ने। पसुपति—महादेव। ३२ भगुल—भगोड़े।

४२-४३. असु—प्रान। घटि—कमी। सूर—सूर्य। इषुधी—तरकश

४६ बार—(१) समय (२) देरी। बारन—हाथी। बिरंचे—ब्रह्मा को (या क्रुद्ध होते हैं)। रंचै—रँगते हैं।

४७-५१. चये—समूह। दाम—बंधन। वइक्रम—वयःक्रम, उमर। लोचत—मुग्ध होते हैं। भजो—शरण में आओ। अलोक—अपकीर्ति।

५६. जै—मत, नहीं।

६६. नृपता—राजाओं का समूह।

६७-६८. दुरन्त—भयंकर। चक—चकवा।

७६. सूरसुव—सुग्रीव।

८३. देववधू—सीता।

६३-६४ ईस—बड़े। भोइ—भर कर, भोगकर।

६५-१०४. चिता—चिंता रूपी अग्नि। सेही—एक जानवर जिसके शरीर में काँटे ही काँटे होते हैं। तूल—तुल्य। बटा—गेंद। गो बल—बल चला गया। भंगी—भंग, मान। सुर—आवाज। करे रचे। भूधर—पहाड़ों के समान। इभ—हाथी। गरे के इ०—गले के कटने पर भी। नग—पर्वत। नाग—हाथी

१२३. नीरज—मोती। बेस—समान।

१३४-१३५. ईठि—मित्रता। बात—वस्तु। जै—मत। अमित्र—शत्रु। जुवान—वचन। मठी मठधारी।

१३८. निग्रहौ—पराजित करो।

१४०. तेरह—चार दिशाओं के पड़ोसी चार राज्य, (जो शत्रु होते हैं) उन राज्यों के पड़ोसी चार राज्य, (जो मित्र होते हैं), फिर उन मित्रराज्यों के पड़ोसी चार राज्य (जो उदासीन होते हैं) और तेरहवाँ स्वयं अपना राज्य।

(१) रामचन्द्रिका

१. विमानी इ०-(१) जिनने राजहंसों को अपना विमान बना रखा है (ब्रह्मा)। (२) जिनने श्रेष्ठ राजाओं को मान से रहित कर दिया है (दशरथ)। विबिध इ०—(१) अनेक देवताओं से युक्त (मेरु), (२) अनेक विद्वानों से युक्त (दशरथ) अचल—पहाड़। दीपियत—प्रकाशित है। दिलीप—सूर्य वंश का एक प्रसिद्ध राजा। सुदक्षिणा इ० (१) अपनी पतिव्रता रानी सुदक्षिणा का बल है (दिलीप) (२) अच्छी दक्षिणा का बल है (दशरथ) उजागर—प्रसिद्ध। कौ—अथवा। बहु इ०—(१) अनेक नदियों का पति (समुद्र), (२) अनेक सेनाओं का पति (दशरथ)।

छनदा इ०—(१) छनदा-न-प्रिय अर्थात् जो रात्रि को प्यारा नहीं है (सूर्य)। (२) जिसे क्षण अर्थात् उत्सव और दान प्यारे हैं (दशरथ) भागीरथ इ०—(१) राजा भागीरथ के पीछे-पीछे चलने वाला (गंगाजल), (२) राजा भागीरथ की चलायी मर्यादा का पालन करने वाला (दशरथ)।

५. लाल मुख वाला सूर्य रूपी बंदर गगन-रूपी तरु पर जा चढ़ा और क्रुद्ध होकर उसे हिलाकर समस्त तारा-रूपी फूलों से रहित कर दिया (सांग रूपक)।

६. द्विजराज (चन्द्रमा) ने ज्यों ही तनिक वारुणी (पश्चिम दिशा) से प्रेम किया त्योंहीं भगवान (सूर्य) ने उसे संपत्ति और शोभा के साज से रहित कर दिया। (समासोक्ति—द्विजराज=ब्राह्मण, वारुणी=मदिरा, भगवंत=भगवान। ब्राह्मण मदिरा से प्रेम करता है तो भगवान उसकी संपत्ति शोभा को छीन लेते हैं)।

७. वहाँ ऐसी नगरी नहीं है जिसमें पद-पद पर हंस न हों, जहाँ कमलों के झुंड न हों और जहाँ मोटे-मोटे तालाव न हों। वहाँ ऐसी स्त्री नहीं है जिसके प्रत्येक चरण में बिछुए न हों, जिसके मोतियों का हार न हों और जिसके पीन पयोधर न हो।

८. मंडि—भरकर। अचला—पृथ्वी। पालि इ०—विश्वामित्र के कथन को पूरा करके, विश्वामित्र ने राजा को कहा था कि राम अवश्य धनुष तोड़ देंगे। सोधु—खबर (टूटने की आवाज से)। ईस—महादेव। बोधु—जगाकर। जगदीश—विष्णु। बाधि—बाधा पहुँचाकर। साधि ई०—अपना मोक्ष सिद्ध कर।

९. मुद्रिका—पवित्री। स्रुवा—होम में आहुति देने की लकड़ी की कलछी। स्यों—युक्त, सहित। रस वीर—धनुप आदि का धारण वीर रस का धर्म है, पवित्री आदि को धारण सात्विक प्राकृति वाले ब्राह्मण आदि का धर्म है।

१० सिखीन्ह—लपटों से, अग्नि ज्वाला से। कलंकित—कलंकी रावण की। कनेक—कनक। सितकंठ—महादेव।

११. अरिहा—शत्रुघ्न।

१२. छत्र—छत्रिय। सची—स्त्री।

१३. सुंदरि—स्त्री (सीता) श्रीफल फल्यो—सुन्दर फलों को प्राप्त किया हुआ। सिद्ध—तपस्वी=(राम) साधन=लक्ष्मण सिद्धि=सीता। लक्ष्मण और सीता के साथ राम ऐसे जान पड़ते हैं मानो सिद्ध तपस्या का फल प्राप्त करके साधन और सिद्धि के साथ जारहा हो।

१४. वन में जाते हुये राम, सीता और लक्ष्मण ऐसे शोभित हो रहे हैं मानों सुन्दर मेघ, आकाश-गंगा और बिजली शरीर धारण किये शोभा देते हैं; अथवा मानो यमुना, गंगा और सरस्वती के अंशधारी

(अवतार) हैं, जिनके भाग्य को बड़ा कहना चाहिये, अथवा मानो इन्द्र इन्द्राणी को लिये पुत्र जयन्त सहित पृथ्वीलोक पर शोभायमान हैं, अथवा शुक्ल और कृष्ण ये दोनों पक्ष और उनकी सन्धि (पूर्णिमा) शोभित है, अथवा संध्या, मध्याह्न और प्रातः इन तीनों कालों की तीनों सन्ध्यएँ एकत्र हो गयी हैं। इन स्वच्छ-सुन्दर-तीनों व्यक्तियों को देख लोग प्रत्यक्ष ही मोहित हो जाते हैं।

१६. वा सों—उस (चन्द्र को)। सुधाधर—(१) सुधा को धारण करने वाला (२) सुधामयअधर वाली। द्विजराय—ब्राह्मणों का पति। द्विज-राजि—दन्तपंक्ति।

कला—(१) आकाश (२) नृत्य आदि कलाएँ। रत्नाकर—(१) समुद्र (२) रत्नों का समूह। अंबुर—(१) आकाश (२) वस्त्र। कुवलय—(१) कुमोदिनी (२) पृथ्वी मंडल। कर—(१) किरण (२) करने वाली।

१७. केतु—(१) चिह्न (२) केतु असुर, आन—और, दूसरे। मुसल—मूसरचन्द, मूर्ख।

१८. जग-वंद—जगत का वंद्य।

१९. दुख की दुपटी—दुःखरूपी वस्त्र। निघटी इ०—मृत्यु का तेज घट गया। तटी—समाधि। निकटी—निकटी ही। गुरु इ०—ज्ञान का बड़ा ढेर। गुन धूरजटी—महादेवजी के से गुन (प्रभाव) वाला।

२०. रुचि—शोभा। सेवं—सेवा। श्रीफल – (१) लक्ष्मी, संपत्ति। (२) वृक्ष विशेष।

२१. भयानक वेर—प्रलय काल। अर्क—(१) सूर्य (२) आक। रूपन—रूपों से। ग्रसै—मुग्ध करती है।

२२. कुल कन्या—बड़े कुल की कन्या। धाइ (१) धाय (२) धाय का पेड़। सितिकंठ—(१) महादेव (२) मोर

२३. विष—(१) जहर (२) पानी। जीवनहार—(१) जीवन हरने वाला, मारने वाला, (२) पानी लेने वाला, पानी पीने वाला।

नोट—इस दोहे में विरोधभास का चमत्कार है।

२४. धूमपुर—धूम-समूह। धूमकेतु—अग्नि। धूमयोनि—बादल। पुत्रिका—पुतली। बगलरा—बगूला। कामिनी—स्त्री (रति) मठेस—मठधारी। साम—सामवेद। छाया-जाया—सीता का छाया-रूप।

२५. याचक—यहाँ (भौंरा चम्पा के पास नहीं जाता)। असोक—अशोक। शोक छोड़ कर बिलकुल अशोक होगया, किसी का शोक उसे प्रभावित नहीं करता।

करुना—(१) करना नामक वृक्ष (२) दया।

२८. चक्रिन—सांपों से। चन्दन-वात—मलय पवन। अति इ०—वह मन को सुधिहीन बनाता है तो यह न्याय ही है, अनुचित नहीं है। मृग-मित्र—चन्द्रमा। निशाचर-पद्धति—(१) राक्षसों का ढंग (२) रात्रि में चलना। प्रतिकूल—दुखदायी। जाने नहीं—पशु होने के कारण समझते नहीं। बने—शोभा देता है। कमलाकर—(१) कमला का पिता (२) कमलों का आकर। कमलापति—कमला की अवतार सीतापति राम।

वर्षा-वर्णन

३१-३६. तूर, तार, आवझ—बाजे विशेष। इन्द्रलोक-तिय—अप्सरा। मनै—मन को। स्यों—साथ। रतनावलि—रत्नों की

माला, रत्नों की बंदनवार। देव—देवताओं ने। निरघात—प्रहार। गोरमदाइनि—इन्द्र-धनुष। जलधार बृथा ही—जलधारा नहीं है। (अपह्नुति अलंकार) चंद्रबधू—(१) चन्द्र की बधू (२) बीर बहूटी। तरुनी—स्त्री (अनसूया)। उर में—गर्भ में (चन्द्र अत्रि का पुत्र कहा गया है)। किल—संस्कृत का अेक अव्यय। अहिमाली—(१) महादेव (२) साँपों का झुण्ड।

रलाई—मिलाई। सुख—सहज ही। सुखमुख—स्वाभाविक। नैन अमल—(१) निर्मल नेत्र (२) नदियाँ निर्मल नहीं है। निकाई—सुन्दरता। करेनुका—(१) हथिनी (२) क=पानी, रेनुका=रेत। गमन—(१) चाल (२) जाना, आना जाना। मुकुत—(१) स्वच्छन्द (२) मुक्त, रहित। हंसक—(१) बिछुआ (२) हंस। अंबर—(१) वस्त्र (२) आकाश।। बलित—घिरी हुई, युक्त। नीलकण्ठ—(१) महादेव (२) मोर। मति—मन।

भौंहैं इ०—इस पद्य का अर्थ कालिका और वर्षा दोनों पक्षों में लगेगा। वर्षा में जो इन्द्र-धनुष है वह कालिका की भौंहें हैं। वर्षा के सुन्दर उमड़े हुये बादल कालिका के सुन्दर उठे हुये कुच हैं वर्षा में बिजली की जो ज्योति है वही कालिका के जड़ाऊ गहनों की कान्ति है। कालिका ने अपने मुख से चन्द्र की शोभा को सहज ही दूर कर दिया उसी प्रकार वर्षा ने भी चन्द्रमा की स्वाभाविक शोभा को दूर कर दिया है (वर्षा में चन्द्र बादलों में छिपा रहता है)। कालिका ने अपने नेत्रों से निर्मल कमलों की सुन्दरता को दलित कर दिया है। उसी प्रकार वर्षा में नदियाँ (नै) निर्मल नहीं रह गयी है ('न अमल') और कमलों की सुन्दरता नष्ट हो गई है। कालिका ने प्रबल हथिनी की सुन्दर चाल को छीन लिया है उसी प्रकार वर्षा में प्रबल पानी

ने रेट और गमन को दूर कर दिया है। (पानी के कारण रेत नहीं रह गयी है तथा लोगों का आना जाना बंद होगया है) कालिका के पैरों में पहने हुये बिछुओं का सुखद स्वच्छन्द शब्द होता है इसी प्रकार वर्षा हंसों के सुखद शब्द से मुक्त (रहित) है वर्षा में हंस चले जाते हैं) कालिका सुन्दर वस्त्र पहनती है, वर्षा आकाश में घिरी हुई है। कालिका नीलकंठ महादेव के मन को सुग्ध करती है। वर्षा मोरों के मन को सुग्ध करती है।

४०, राम की उक्ति। अनुरूपक—सीता के इन अंगों की प्रतिमूर्तियाँ। गति इ०—यथासंख्या अलंकार। अवलंबि—आधार बना कर।

४२, वृद्ध शरद ऋतु उज्वल या शुभ्र है इसलिये। सुजाति-(१)अच्छे कुल में उत्पन्न (दासी) (२) सुन्दर या सुन्दर मालती के फूलों से युक्त। जगावन—(१) दासी राजकुमारों को जगाती है (१) शरद आकर हमें सावधान होने को कहती है कि अब सीता की खोज का समय आगया।

४३, रोदसी—आकाश और पृथ्वी। बलनि—(१) बल से (२) सैनिक समूह। दलति—दमकती है। राजि—पंक्ति। पुरइन—कमलिनी। पहुमी—पृथ्वी।

४४, मारत—मार से मारते हो। दचक—धक्का। दचकत— दबना। भोगवती—नागपुरी।

४५, मड़े—ढक देता है। अरि कै—हठ (मान) किये हुये।

४६, जल जोर इ०—जल के वेग से देवों का अंगराग उतर कर जल में मिल गया और उनके वस्त्राभूषण बह आये। सुर—सुरों को।

४७, छिद्र—धारा। नल—जिसने सेतु बाँधा।

४८, लगि—टकरा कर। फेरि—उलट कर। पति इ०—पति

समुद्र की आकाशनदी में प्रीति देख कर नदियाँ मानों रूठ कर पिता हिमालय के घर चल दीं।

५०. वेनु—एक राजा। ईस—ईश्वर। विदेही—जनक।

५१. नठैं—नष्ट करते हैं। अनैसे—बुरे।

५२. मंत्र—सलाह। तंत्र—शास्त्र।

५३. सुरथ—एक राजा जिसका राज्य मंत्रियों ने छीन लिया। कवि—शुक्र। दासरथि-दूत—हनुमान।

५४. विख से—स्वाद में कटु फल में हानि कर। दाड़िमबीज से—स्वाद में मधुर फल में हितकर। गुड़ से—स्वाद में मधुर फलमें हानिकर। नींव से—स्वाद में कटु फल में हितकर।

५६. जूथप—सेनापति। संहार काल—प्रलयकाल। काली—नागिनी। रवत—रोता है।

५७. गदा—नगाड़ा बजाने का डंडा।

६२. देवनदी—आकाश-गंगा। नरदेव—राजा। हूकीं—भयभीत। दंड इ०—दो-दो ड्योढी (सेवा करने के निमित्त)

६३. बालनाश—(१) बच्चों की मृत्यु। (२) केशों को मूँडना।

६४. द्विज बृत्तिन हरैं—(१) ब्राह्मण की वृत्तियाँ हरते हैं (२) ब्राह्मण वृत्तियाँ पढ़ते हैं।

६६. आन जन्म—पुनर्जन्म नहीं लेते, मुक्त हो जाते हैं।

कविप्रिया

३. विश्व मातें—विष से मतवाले होते हैं।

५. तरुन तन—पेड़ो पर। फूल—प्रफुल्लता का समय। चित्त—चित्त को भी।

६. रति—प्रेमपूर्वक, सुख साख—सुखमयी । भाग—दिशाएँ । पूजित—पूरित । बौर—चावल ।

७. एक भूत मय—अग्नि मय । भूत—प्राणी, प्राणियों से युक्त विश्व । मुक्ति—मुक्त । सिंधुर—हाथी । काकोदर—साँप । करि-कोव—हाथी की सूँड़ ।

८. श्रुति-गाथा—वेद-वचन । घोंसलों में ही रहने वाले ।

६. रमन इ०—रमने और रमाने ।

१०. निर्घोष—वज्रपात । ओली ओड़िये—आँचल फैला कर भीख माँगती हूँ ।

१३. भारथ महि—भारत भूमि में । गुर-गुल—फूल । करम-करम—क्रम-क्रम से ।

१४. असु—प्राण । तामोर—तांबूल । तपन—सूर्य । तापन—अग्नि,

१५. भावन—भावों से । उपंग—एक बाजा, नसतरंग ।

१७. तनोरुह—पत्ते । बित वन । छोरै—छुड़ाते हैं ।

१८. दल—पत्ते । ज्वल—ज्वाला । दाव—दावाग्नि ।

१६. कु-पुरन—बुरे नगरों में । आधि—मानसिक संताप ।

२१. बिय—दूसरा ।

२३. शूली—महादेव । कपाल थली—श्मशान भूमि ।

२४. कृपा—कृपाचार्य ।

२५. कावनि—कावों ने ।

२७. छुटौ—छुड़ाया हुआ । छुपै—छुलता है ।

२६. सिखी—मोर । दुजन—शत्रु ।

३०. तरल—चंचल ।

रसिकप्रिया

१—कानन—कानों में, हरे ई हरे, धीरे धीरे निकसौं—निकालूँ।

२. हार—खेत। हारौं—थक जाती हूं, विकल होती हूं। वनमाली—(१) वनों की माला वाला, (२) जल वाला=बादल (३) कृष्ण। नैन—नेत्रों, हृदय-कमल में कमलनयन कृष्ण को देखकर। कमलनैनि—जलपूर्ण नेत्रों वाली। आप घने—जल से गहरे श्याम घन घन (हथौड़े) की तरह हते हैं। घनश्यामनि के द्यौस—बादलों की ऋतु में।

३. घोरत—गरजते हैं। सजल। सजल। उज्वल—चमकदार या गहरा। इम—हाथी। काल-कुटुम्बिनी—काल की स्त्री।

४. गुन—कारण। अपावन—इस अपवित्र को। या सों—इसको। सेस इ०—शेष को विषधर। विधि—विधाता। विधि-हीनो—उचित काम न करने वाला, मूर्ख। सूर—सूर्य। पापु—इस पापी को।

५. आये ते—प्रियतम के आने पर। मोलि लयी—दासी के समान। सौति—सौत भी कहीं सखी हुई है।

६. कदली—केला। वदली—वदरी, वेर। मलिनी—मैला (ऊँट का विशेषण)। नाम—नागर वेल। अवलीन—समूह, राशि।

७. कर्के—ले कर। नतना—ढकने का वस्त्र (पाठांतर, वसना)। छल कै—बनावटी। चल कै—आकार। पतुकी—हाँड़ी या मटकी।

८. दानी—जगाती। गो इ०—प्रेम चला गया? वैर करने लगो?

विज्ञानगीता

१. जहँ—अर्थात् काशी में। जगदीस—महादेव। कसैं—कष्ट उठा कर साधना करते हैं। प्रबोध-उदोत—ज्ञान का प्रकाश।

२. निरंध—बिलकुल अंधा। मिठानो—मीठा समझ कर। भव—संसार में। रानो—राजा, स्वामी। बंदि—बंधन, कैद। बंदियखानो—बंदीखाना कारागार।

३. जोर—अत्यन्त। आरताई—दुःख, पीड़ा।

४. पेटनि-पेटनि—अनेक गर्भों में। नक्यो—पार किया (या, नाक में दम आ गया)। पेट तें—गर्भ में से। तक्यो—देखा।

५. परे—पड़े हुए। खैबो-ई-पीबो—खाना-पीना ही। निरै-दिवि—नरक और स्वर्ग। दबीठतु—ऊबता है।

६. बिझुकैं—झिझकते हैं, डरते हैं। वृखभादि—धर्म आदि बैल (वृष=धर्म) बार—दरवाने पर।

७. पासिक—फाँसी। लूहर—जलता काठ, पलीता। निनारे—अलग ही। पंच कूटहि करे—पाँच का समूह बनाकर, इकट्ठे होकर (या, खूब कुटाई कर डाली, कचूमर निकाल दिया)।

८. वरु—बल। नरदेव—राजा। बिलसै—व्यवहार करता है। मूरि—जड़ी, औषधि।

९. तनत्रान—कवच। पोतो—जहाज। सम—शान्ति। बटपार—डाकू।

१०. समान—समझदारी। ईस के—महादेवजी से। राघव की निसि—एकादशी।

११. कुचै—सिकुड़ती है। नवै नव—बार बार झुकती है, डिगती है। बालक तें—बचपन से। जुरा—एक राक्षसी, (या, मृत्यु या व्याधि)

१२. सैहै—सहेगा। जा को—अर्थात ब्रह्म को।

१३. आछत—होते हुए। तिसना—तृष्णा। किसना—कृष्णा, काली, अँधेरी।

१४. तरीन—नावों को।

१५. डढ़ो—जला।

१६. नाकुल—नकुल, नेवला।

२८. अजात—अजेय मन को जीतो।

३०. वस्तु—तत्व। परिग्रह—परिजन।